इस पुस्तक पर आपके अभिमत का
अत्यन्त स्वागत होगा।

— केवल व्यस्कों के लिए —

'आकांक्षा' जितनी ही रोमांचकारी, विलासी और भावुक प्रतीत होगी, उतना ही इसके अन्दर निगूढ़ तत्वों के समावेश का दर्शन भी किया जा सकता है। वास्तव में जीवन के अनेक महत्वपूर्ण अंगों की उपेक्षा करना न तो सुन्दर जीवन का परिचायक हो सकता है और न व्यवहारिक। हाँ! इस बात की आवश्यकता अवश्य है कि जो कुछ भी प्रस्तुत किया जाए उसमें सौम्यता हो और मस्तिष्क तथा भावनाओं के लिए पुष्ट भोजन।

आकांक्षा

लाल कृष्ण अग्रवाल

('मानव और मशीन' प्रथम खंड पर उत्तर प्रदेश राज्य सरकार द्वारा ३००) से पुरस्कृत ।)

ले० लाल कृष्ण अग्रवाल
ए ४/८८ए, त्रिलोचन
बनारस

— आकांक्षा निरन्तर दौड़ती है। प्रायः विवेकहीन ही प्रतीत होती है। वह बलवान और कठोर भी पुरुष की भाँति होती है। फिर वह अपने साथ सर्वदा जीवन को संजोए रहती है। जीवन भी क्या है, जो धुएँ का गोला बनकर ही विलीन हो जाता है।—ले०

प्रकाशक—एल० के० अग्रवाल,
ए २/८८ ए, त्रिलोचन,
बनारस।

मूल्य १॥)

First Edition
April, 1955

— कवर शिल्पः लाल कृष्ण अग्रवाल

मुद्रक—आर० एस० धवन,
दि कमर्शियल प्रिंटिंग वर्क्स,
फोन नं० ७०१,
गायघाट, बनारस।

[श्री कान्तानाथ पाण्डेय 'हंस' का व्यक्तित्व उनके उदार हृदय और कवित्वमय स्वाभाविक सूक्ष्म अनुभूतियों का सूचक है। प्रस्तुत भूमिका के लिए लेखक उनके सौजन्य का अत्यन्त आभार प्रदर्शन करता है।]

भूमिका

हिन्दी साहित्य में उपन्यासों की कमी नहीं, प्रत्युत उनका बाहुल्य ही देखने में आता है। इनमें कुछ उपन्यास अच्छे हैं—बहुत ही अच्छे; तो कुछ बुरे हैं—बहुत ही बुरे! संभव है जिन्हें मैं अच्छा समझता हूँ उन्हें भी कुछ लोग बुरे समझें और बुरे उपन्यासों को सर्वथा अच्छे! यह तो अपनी-अपनी रुचि की बात है। परन्तु निष्पक्ष होकर उपन्यास कला के तत्वों का विचार करते हुए यदि सोचने का कष्ट कोई करे तो उसे स्वीकार करना ही पड़ेगा, कि हमारे अधिकांश उपन्यास यातो किसी वाद के चक्कर में फँस कर किसी दल या वर्ग विशेष के प्रचारक का कार्य कर रहे हैं या फिर अपनी नग्न-चित्रण पद्धति द्वारा उद्दाम वासनाओं का व्यापक और गर्हणीय प्रसार करते हुए समाज को क्षति पहुँचा रहे हैं। मानव जीवन के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की उनमें कमी है, शाश्वत सत्यों की व्याख्या उनमें है ही नहीं। यही कारण है कि ऐसी रचनाओं में स्थायित्व का तत्व दृष्टिगोचर नहीं होता।

हिन्दी के नवोदित उपन्यास-शिल्पी श्री लालकृष्ण अग्रवाल की प्रस्तुत रचना "आकांक्षा" मानव के मनोजगत की अच्छी झाँकी प्रस्तुत करती है। इसमें मौलिकता है और आत्मकथात्मक शैली के प्रयोग से एक अपूर्व मोहकता भी आ गई है। इसका जीवन-दर्शन अत्यन्त सूक्ष्म और रोचक है। कल्पना और प्रत्यक्ष का अच्छा संबंध स्थापित किया गया है। आकांक्षा और उसकी अतृप्ति की सरस अभिव्यंजना की गई है। उन्मुक्त प्रेम, प्रणय की विफलता से उत्पन्न कल्पना की शबसता, दाम्पत्य रति, गार्हस्थ्य जीवन, समाज आदि के चित्र भी अच्छे ढंग से चित्रित किये गए हैं। अलौकिकताओं का भी इसमें सुन्दर सन्निवेष है। इन्द्रलोक तक की सैर करायी गई है। दार्शनिक गाम्भीर्य के होते हुए भी कौतूहल की कमी नहीं! भाषा भावों से बोझिल होते हुए अत्यन्त मदमयी और मोहक हो गई है! कहीं-कहीं गद्य-काव्य का सा आनन्द मिलता है।

मनस्तत्व के विश्लेषण पर अधिक ध्यान देने पर भी समाज की अनेक त्रुटियों की मार्मिक चुटकी ली गयी है। व्यंग का अच्छा प्रयोग स्थान-स्थान पर देखने में आता है! लेखक का भाव और भाषा दोनों पर अधिकार दिखलायी पड़ता है।

श्री अग्रवाल के मुख से ही मुझे यह समूचा उपन्यास सुनने का अवसर प्राप्त हुआ था। आज उन्हीं की इच्छा से इस पुस्तक के संबंध में ये दो शब्द लिख रहा हूँ। मुझे लेखक में प्रतिभा और निपुणता के तत्व पूर्ण मात्रा में दिखलाई पड़ रहे हैं। उनका रचना कौशल समय

के साथ और भी अधिक प्रस्फुटित होगा तथा वे हिन्दी के उपन्यास वाङ्मय की श्री वृद्धि करेंगे इसका मुझे पूर्ण विश्वास है।

श्री विद्याभवन
नगवा, काशी
चैत्री पूर्णिमा २०१२ वि०

कान्तानाथ पाण्डेय 'हंस' एम. ए.
[कविराज हंस]
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
हरिश्चन्द्र कालेज, काशी



मधु के प्रेमी, मधु पर गुंजार करने वाले, मधु को ही पान करने वाले मधुकर ! तुम्हारे लिए प्रत्येक ऊषा नित नवीन, मादक और सुगन्धित हो।

मुकुलित पंखुड़ियों पर, शीतल मन्द बयार में, उल्लास की अप्रतिम आभा बिखरते हुए तुम्हे निरन्तर मादकता की अनुभूति हो।

प्रेम की अपूर्व आकांक्षा, मिलन की असीम चाह और विरह की मीठी तड़पन भी ; शतदल यौवन को सदैव प्रवाहित करता रहे।

नारी के नयन त्रिगुणात्मक ये सन्निपात
किसको प्रमत्त नहीं करते
धैर्य किसका ये नहीं हरते...
लालसायें वासनायें जितनी अभाव में
जीवन की दीनता में और पराधीनता में
पलने लगीं वे चेतना के अनजान में
किंतु किस युग से वासना के बिंदु रहे सींचते
मेरे संवेदनों को
यामिनी के गूढ़ अन्धकार में
सहसा जो जाग उठे तारा से...
देख...
ढुलक रही है हिमबिन्दु सी
सत्ता सौंदर्य के चपल आवरण की
हँसती है वासना की छलना पिशाच सी
छिपकर चारो ओर क्षीण की अंगुलियाँ
करती संकेत हैं व्यंग उपहास में...
पुण्य ज्योतिहीन कलुषित सौंदर्य का—(!)
गिरता नक्षत्र नीचे कालिमा की धारा सा
असफल सृष्टि सोती—
प्रलय की छाया में।

[प्रलय की छाया] स्व० श्री जयशंकर प्रसाद

आकांक्षा का उच्छ्वसित वेग !
मानता नहीं बन्धन विवेक !
चिर आकांक्षा से ही थर थर उद्वेलित रे अहरह सागर,
नाचती लहर पर हहर लहर
अविरत इच्छा ही में नर्तन, करते अबाध रवि, शशि उडुगण,
दुस्तर, आकांक्षा का बन्धन !
रे उडु, क्यों जलते प्राण विकल ! क्या नीरव नीरव नयन सजल !
जीवन निःसंग रे व्यर्थ विफल !
एकाकीपन का अंधकार दुस्सह है इसका मूक भार,
इसके बिषाद का रे न पार !

[सन्ध्या तारा]

—श्री सुमित्रानन्दन पंत

…'आकांक्षा' के छपे फार्म … बहुत दूर तक पढ़ गया हूँ। … भाषा बहुत साफ और सुन्दर है। प्रवाह भी है। … इस रचना की सुन्दर प्रवाहमयी भाषा और पाठक पर प्रभाव डालने वाली भार हीन शैली मुझे पसन्द आई है। मुझे आशा है कि … आगे चलकर बड़ा विषय भी मिल जाएगा। बाल्मीकि को छंद मिला था पर विषय नहीं मिल रहा था। परन्तु भगवान की कृपा से उन्हें विषय भी मिल गया। तब जाकर वे महान् ग्रंथ दे सके। मेरी हार्दिक शुभ कामना है कि … भविष्य में उत्तम ग्रंथों से साहित्य को समृद्ध करते रहें।…

श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी

अध्यक्ष हिन्दी विभाग

काशी हिन्दू विश्व विद्यालय

काशी।

१

जब मैं छोटा था तो मेरी अकांक्षाएँ आज से कहीं ज्यादा थीं। इस समय भी तो मेरी आकांक्षाएँ कम नहीं हैं। परन्तु इस समय की बात दूसरी है। आगे क्या होगा कौन जाने ? शायद मैं बूढ़ा हो जाऊँगा तब, और जब मैं बूढ़ा हो जाऊँगा, तब भी क्या मेरी कोई आकांक्षा शेष रहेगी ! तब तो मृत्यु रहेगी मेरे सामने, एक अन्धकारमय रजनी रहेगी अपना भय दिखाती हुई, और मेरी आकांक्षा क्या काफूर हो जायगी, उस हड्डी के कंकाल के दिग्दर्शन मात्र से ! एक समय था, मैं आकांक्षा से परिपूर्ण, दिल की गुदगुदी और भावनाओं का फूल संजोता हुआ, अपनी मस्त अदाओं और शोख कला का प्रदर्शन करता हुआ—विहार करता था, शयन करता था—और तारों को भी देखता था, जब उनके बीच में भरा पूरा चाँद घूमता, मन्द मन्द मुस्काता हुआ। परन्तु मैंने चाँद का क्षय भी देखा, तारों की कुम्हलाहट भी देखी, मैंने गुलाबों की रंगीनी—उनकी भीनी सुगन्ध भी देखी, परन्तु कराल गाल को भी देखा, जब कि पंखुड़ियाँ सूखने लगीं, वह झर कर गिर भी गईं, और उनकी जगह नई नई कलियों ने अपनी मन्द मुस्कान से भवरों को मुग्ध कर दिया। आज मैं भी तो देख रहा हूँ मेरी आकांक्षा को। क्या हैं मेरी आकांक्षाएँ ? अपनी आकांक्षाओं को देखकर सिहर उठता हूँ। मेरी आकांक्षाएँ भी कभी कली थीं,

फिर कुसुमित हुईं, और आज तो अपना मन्द मन्द सुगन्ध का प्रसार भी कर रही हैं, परन्तु कल क्या होगा कौन जाने ? मुझे याद हो आती है एक साथ—जन्म, जरा, व्याधि और मृत्यु।

हाँ, तो मेरी आकांक्षाएँ, मेरे जन्म से ही मेरे साथ हैं। गर्मी के दिनों में कभी कभी मैं चन्द्र लोक और सितारों की सैर करना चाहता। मेरी आकांक्षा थी, मुझे कहीं से कोई उड़नखटोला मिल जाता, तो मैं फिर उसके पेंच को घुमाते ही गगन विहार करता, और मैं विहार करता तो अकेला, मैं नहीं चाहता था मेरे साथ मेरा कोई दोस्त भी जाता या फिर मेरी कोई दोस्तिन ही सही—चाहे वह सुन्दर भी कितनी ही होती, और मुझसे प्रेम भी वह करती अपने तन मन प्राण से। क्या था मैं उस समय, जब मेरा बचपन था, और क्या थी मेरी आकांक्षाएँ, जब मैं उड़नखटोले का विहार करना चाहता—अकेला—क्या देखता, किसको देखाता—मेरी आकांक्षा ही तो थी ! पुरानी बातों को याद करता हूँ, तो बरबस वर्तमान की याद हो आती है—आज सर्वत्र फीकापन है, सर्वत्र जड़ता का आभास है, न है वह एकान्त न उसकी चाह—न है वह उड़नखटोला और न है चाँद की मुस्कुराहट। कितनी विषमता है, कितना अन्तर है—मेरी आकांक्षा में—आज की और तब की।

मुझे याद आता है, मेरा बचपन, परन्तु वर्तमान को भी नहीं भुला पाता हूँ। क्योंकि मैं अकेला जो हूँ। आज भी तो मैं चाहता हूँ—कामेट विमानों की सफर करूँ—समुद्रों में जहाजों की रंगीनी को देखूँ—आज भी तो मैं चाहता हूँ महिलाओं के साथ नाचूँ, उनके साथ विहार करूँ, परन्तु अकेले नहीं—अकेला जीवन शून्य है—उसमें कोई राग नहीं। मुझे हँसी आती है उस लड़कपन की, जब मुझसे मेरी दोस्तिन कहती—देखो ! जब तुम्हारे सामने उड़न-

खटोला आवे तो मुझे भी बुला लेना, मैं भी चलूँगी तुम्हारे साथ! जरा मुझे भी देखना है, चाँद और सितारों को, कैसे हैं? कैसे होते हैं वहाँ के खिलौने? फिर मुझे यह भी देखना है—वहाँ के लड़के लड़कियाँ कैसे होते हैं, उनके खेल कैसे होते हैं, फिर विहार तो विहार—मैं विहार करना चाहती हूँ—उड़न-खटोला और चाँद सितारों की सैर, चाहे वहाँ शून्य भी हो तो क्या हुआ—मुझे तो विहार में ही सब कुछ मिल जायगा। और एक मैं था स्वार्थी, मैंने उसे ठुकरा दिया, उसकी दिल की कली को मसोस डाला—शायद फिर कभी न खिल सकी वह—मैंने कहा हूँ! और जब कि मेरी मुठ्ठी मेरे गालों से चिपकी हुई थी, मेरी आँखें भी टेढ़ी उस क्षितिज की ओर देख रही थीं। मैंने कहा मैं तो अकेला ही जाऊँगा—तुम्हें क्यों ले जाऊँगा! अकेला क्या मैं नहीं कर सकता विहार! मुझे तो घूमना है, मैं विहार करूँगा, दिन रात! न मुझे खाने की सुध रहेगी, न पीने की! मैं उस प्रगाढ़ रात्रि को देखूँगा, तितलियों की झूमाहट को देखूँगा, मैं रेल देखूँगा—फिर देखूँगा वहाँ के नाच, गाने, संगीत और वहाँ से अपने साथ ले आऊँगा एक प्यारा कुत्ते का बच्चा और फिर यहाँ पर घूमूँगा उसके साथ—सभी को ललचाता हुआ।

आज मेरी आकांक्षाएँ कम नहीं हैं। आज मुझसे कोई कहे—मुझे भी ले चलना तुम अपने साथ—हाँ वह कोई स्त्री ही हो, तो मैं उसको अपने सिर आँखों पर उठा लूँ! अपनी समस्त आकांक्षाओं को उस पर निछावर कर दूँ! मेरी समस्त आकांक्षाओं की पूर्ति हो जाए! मेरी आज की आकांक्षा ही क्या है—वह केवल है एक स्त्री मात्र! जो मेरे साथ हो, मेरे साथ विहार करे—मेरी आकांक्षाओं में वह भी मेरे दिल की रानी बनी रहे! जो मैं भोगूँ तो मेरी आत्मा न भोगे, वह भोगे—जो मैं देखूँ—वह मेरी आँखें न देखें, उसे ही

दिखाऊँ और जिसे मैं स्पर्श करूँ वह अन्य कुछ न हो मेरी जीवन संगिनी मात्र ही हो।

समय भी क्या है, कितना परिवर्तनशील ! कभी था मैं, जब मेरे जीवन में स्त्री मात्र का कोई मूल्य न था। उस समय मेरे जीवन का राग भी भिन्न ही था। परन्तु आज तो समस्त सृष्टि नारीमय ही प्रतीत होती है ! मैं चाहता हूँ वर्तमान को भुला दूं। मैं चाहता हूँ अतीत में खो जाऊँ। परन्तु मैं असहाय हूँ। मेरे में उन भावनाओं का नितांत अभाव है। मेरा हृदय शून्य हो चला है। वापस जाना कठिन ही नहीं, असम्भव है। मेरी प्यास को मेरा अतीत नहीं भुला सकता। फिर मेरी आकांक्षा को मेरा सुदूर भविष्य भी नहीं हतोत्साह कर सकता—जब कि सर्वत्र पतझण का मौसम होता—सर्वत्र जड़ता का आभास होता—लू के झकोरों की नीरवता होती या फिर हिमपात के शीत का आह्वान होता—मेरा बुढ़ापा मुझे याद हो आता—मुझे दृढ़ वैराग्य का आभास होता—तब न होता बचपन का उड़नखटोला, न होती मेरी वर्तमान की नारी की नीरा और तब केवल होता—गांभीर्य, चिन्तन और असहायता।

असहाय तो मानव मात्र है। आकांक्षा ही तो असहायता का प्रतीक है। आकांक्षा न हो तो फिर क्या चाह, फिर क्या कमी, फिर क्या भोग वासना ! परन्तु आकांक्षा तो समय का सौन्दर्य, आत्मा की गुहार और प्राणी की चेतना है। आकांक्षा में सुख का लेश है, आनन्द की अनुभूति है, और मीठी मीठी तड़पन भी तो है। मेरी आकांक्षा जितनी बलवती आज है, उतनी शायद कभी न थी। मेरी तड़पन भी आज जितनी अधिक है— उतनी कभी न हुई है, न होगी। आज वसन्त की बहार है ! रजनी की मुस्कान है, फिर है सर्वत्र केलि क्रीणा। ऐसे समय में जब कि मुझे एक संगिनी की आवश्यकता

है—मैं अकेला हूँ। मेरी आकांक्षा का करुण क्रन्दन है, मेरे मनोभावों का बलात्कार है, मैं चाहता हुआ भी नहीं पाता हूँ। परन्तु यह तो है क्षणिक, यह तड़पन भी है केवल बिजली की कौंध और थोड़े ही समय में, मैं अपने आँसू को बहाता हुआ सो जाऊँगा निद्रा की गोद में—और जब सुबह उठूँगा तो मेरी सारी पीड़ा काफूर हो जायगी। मुझे फिर कुछ समय के लिए किसी की भी याद न रहेगी—मुझे याद तो संगिनी की तब आती है जब मैं अकेला रहता हूँ, जब मेरी भावनाएँ किसी के साथ केलि क्रीणा का अह्वान करती हैं, जब मैं किसी में अपने आपको भूल जाना चाहता हूँ!

मैं क्या करूँ! बेबस हूँ! मेरी आकांक्षा ने मुझे कहीं का न रख छोड़ा! मेरी आकांक्षा की कभी भी पूर्ति न हुई! हाँ मेरी आकांक्षा की समाप्ति भी कभी न हुई! वर्तमान में केवल स्त्री ही आकांक्षा का एकमात्र विषय हो सो भी नहीं। मेरी अन्य भी आकांक्षाएँ हैं। मैं चाहता हूँ सुगढ़ शरीर का होऊँ, मैं चाहता हूँ—युवा से परिपूर्ण रहूँ—मेरे गुण भी अलौकिक हों और मैं सुन्दर भी हूँ तो इतना कि—सभी स्त्रियाँ मोहित हो जाएँ! परन्तु मेरा अभाग्य यहाँ भी बुलंद है। मुझमें सभी अपूर्णता है—मुझमें पूर्णता की कोई निशानी नहीं! मेरी आकांक्षाएँ मेरे अन्दर मसोस कर रह जाती हैं! मैं देखता हूँ कालेज की लड़कियों को, सिनेमा की नायिकाओं को और फिर यह भी तो देखता हूँ—नए-नए आनेवाले राजदूतों की पत्निओं और उनकी सुपुत्रियों को! मैं क्या हूँ! मेरा भाग्य क्या है! मेरी आकांक्षा क्या है—मैं किसे दिखाऊँ! कैसे दूर करूँ! पूर्ण भी हों तो कैसे? मैं अपनी आकांक्षा पर ही खीजने लगता हूँ। परन्तु क्या करूँ बेबस हूँ। समय को कैसे भुला सकता हूँ! मुझे चाह है, मुझमें मेरा राग भी

है—मैं चाहता हूँ मैं ही सर्वत्र आकर्षण का केन्द्र-स्थल बन जाऊँ ! सभी रमणियाँ हाथ में जयमाला लिए मेरे गले में डालने के लिये घूमती फिरें !

एक आह ! मेरे दिल से निकल पड़ती है। परन्तु फिर भी मैं सन्तोष करता हूँ। मैं चाहता हूँ मुझे शान्ति की प्राप्ति हो। मैं दिल और दिमाग दोनों से ही शान्ति प्राप्त करना चाहता हूँ। मेरे लिए इस समय शान्ति की खोज ही सबसे बड़ी आकांक्षा है। मैं नहीं देखना चाहता किसी भी रमणी का प्रतिविम्ब मात्र ! न तो मैं देखना चाहता हूँ किसी युवक की सुन्दरता, न उसकी सफलता को ही। जब मैं असफल ही रहा। जब मेरा चैतन्य तड़पता ही रहा ! जब मेरा राग भी अधूरा रहा। क्या करूँगा केवल आकांक्षा को लेकर, धड़कते हुए हृदय को संभाल कर, और कोरी निराश आँखों को घुमाते हुए ! मुझे शान्ति चाहिए ! मुझे सन्तोष चाहिए ! मुझमें आकांक्षाओं की शून्यता चाहिए ! यही तो मेरी वर्तमान की आकांक्षा है। मैं आकांक्षा से दूर रहना चाहता हूँ। मुझे तू जीवन गुजारने दे—सुख से, सन्तोष में और—मुझे दहला मत ! मैं पागल हो जाऊँगा ! तब कहीं का भी न रहूँगा, मुझे कोई रमणी वरण न करेगी ! न ही मैं बन सकूँगा—सर्वत्र आकर्षण का केन्द्रस्थल !

२

बचपन का महल कितना विशाल था। दो मंजिला, तीन मंजिला ही नहीं—सात-सात मंजिलों का मकान था। मैंने अपना कमरा चुना था—जो सबसे ऊपर था—और अकेला था। उसके आस-पास और अगल-बगल भी कोई दूसरा कमरा न था। मैं सोच रहा था, उस गगनचुम्बी कमरे पर कैसे चढ़ूँगा, फिर चढ़ भी जाऊँगा तो नन्हें-मुन्ने पैरों से उतरना भी पड़ेगा। परन्तु आकांक्षा तो आकांक्षा—मेरी आज की आकांक्षाएँ कितनी विशाल हैं। मैं चढ़ना चाहता हूँ अमेरिका के न्यूयार्क के गगनचुम्बी मीनारों पर। मीनार ही क्यों—जहाँ युगुल पक्षियों का निवास हो! जहाँ रंगीनी का खुला प्रदर्शन हो। मेरी आकांक्षा की चढ़ान कम नहीं है—मैं डरता था ऐसी आकांक्षा करने में भी परन्तु कर ही तो बैठा—अब अपने नन्हें-मुन्ने और असहाय साधनों और कटु अनुभवों से वापस लौट रहा हूँ—धीरे-धीरे वापस आना चाहता हूँ—समतल धरातल पर—जहाँ से मुझे फिर यह भय न हो कहीं मैं गिर न जाऊँ! और तब फिर मैं नीचे सन्तोष की सांस ले सकूँ! और नजर ऊपर उठाऊँ तो देखूँ उस सतमंजिले मकान को, उस सबसे ऊँचे कमरे को—उफ! कितनी मिहनत है—कितना हाँफने लगा मैं—मेरी आकांक्षा को पूर्ण करने में कितनी मिहनत उठानी पड़ी—फिर मैं कभी न जाऊँगा वहाँ। और जब कि मैं यह

सोच ही रहा था, एक हल्का-सा हवा का झोंका आया—मेरा महल गिरकर जमीन की सतह से मिल गया, जहाँ मैं बैठा हुआ था—मेरी आकांक्षाओं का चकनाचूर हो गया ! मैं फिर से अपनी आकांक्षा को संजोने लगा।

परन्तु क्या मेरी ही आकांक्षा एकमात्र आकांक्षा है ! क्या अन्य समस्त प्राणियों में भी आकांक्षा का लेशमात्र नहीं है ! फिर क्या पुरुषों में ही आकांक्षाओं का गुब्बार होता है—स्त्रियों में नहीं होता ! परन्तु कौन देखे आकांक्षा को ! आकांक्षा गुप्त तो इतनी है, मानो गड़ा हुआ धन हो। इस गुप्त आकांक्षा को सिवा धारण करनेवाले के और कोई भी नहीं जान सकता। प्यास तो प्यासे को ही मालूम पड़ सकती है। फिर प्यास तो सभी को लगा करती है। परन्तु यह तड़पन तो तब होती है, जब प्यास लगी हो और प्यास बुझ न सके ! उस समय तो और भी होती है–जब पानी मुँह तक आकर वापस लौट जाये। प्यास बुझती-बुझती रह जाये, परन्तु बुझे न कभी। कभी न बुझे ! कोई पूछेगा प्यास लगे ही क्यों ? परन्तु प्यास से कौन कहे कि तू मत लगा कर। आकांक्षा भी तो चैतन्य के साथ ही सन्निहित है। चैतन्य का भोग भी तो उसी के साथ जुड़ा हुआ है, फिर आकांक्षा तो इस भोग लालसा का साधनमात्र है। मैं आकांक्षा को नहीं भुला सकता। मैं भोग चाहता हूँ, सुख की खोज है मुझे—परन्तु मुझे मिलती है निराशा ! मैं हताश हो जाता हूँ ! मुझे मेरा आकांक्षित भोग नहीं मिलता। तब जितनी ही असीम होती है मेरी भोग वासना, उतना ही मुझे मिलता है असुख, तड़पन और हृदय का हाहाकार !

भाग्यशालियों की भी कमी नहीं है इस संसार में। परन्तु अभाग्यवानों को कौन देखता है यहाँ ? मैं ही हूँ। देखता हूँ और ईर्ष्या भी करता हूँ—उन भाग्यवानों पर जिनको वही वस्तुएँ प्राप्त हो चुकी हैं, जिनकी मुझे आकांक्षा

है। परन्तु मैंने पीछे कभी नहीं देखा—कितने ही मेरी ही तरह हैं—अशान्त, आकांक्षा से परिपूर्ण और निराश। मैं तो कहता हूँ चाहे भाग्यवान हों या अभाग्यवान—सभी में आकांक्षा रहती है—आकांक्षा की समाप्ति कभी नहीं होती। इस प्रकार संसार के सभी प्राणी तड़पते हैं—आकांक्षा भी करते हैं—निराश भी होते हैं—और उनकी व्याकुलता भी कम नहीं होती। यही तो है मानव मात्र का विधान। संसार मात्र ही दुःखी है। मैं भी तो दुखी हूँ। मैं सन्तोष किए बैठा हूँ—क्या करूँ? यहाँ कोई भी सुखी नहीं है। सुख तो भूल जाता हूँ—याद रह जाता है दुःख। जिसमें जितनी ज्यादा आकांक्षा है—वह उतना ही दुःखी है। जो जितना ही ज्यादा सन्तुष्ट और उदासीन है—वह उतना ही सुखी और शान्त है। ईश्वर की भक्ति या ज्ञान और विवेक प्रकाश ही मनुष्य को आकांक्षा रहित, सुखी और शान्त बना सकता है। वैरागी ही सुखी हो सकता है। मेरे में तो अथाह आकांक्षा है, मैं इसे पूर्ण करके ही रहूँगा—चाहे जीवन भर मैं तड़पता रहूँ तो क्या हुआ! मैं अपने असीम विलास को नहीं भुला सकता। मैं चाहता हूँ भोग, भ्रमण और भावना। परन्तु मैं यह स्वयं नहीं जानता कि मेरा क्या है भोग, मैं कैसे करूँगा भ्रमण, और मेरी भावनाओं का रूप क्या है? फिर भी मैं सभी कुछ चाहता हूँ। मैं और कुछ नहीं चाहता—केवल सुखी होना चाहता हूँ—और मैं सुखी तभी हो सकता हूँ—जब मेरी आकांक्षाओं की पूर्ति होती रहे।

मेरा हृदय इस समय भावनाओं से रहित है, मैं जड़ और शून्य नजर आता हूँ। मेरा अन्तःकरण भी न मालूम कैसा गर्म गर्म दहक रहा है। मुझमें सुख का अभाव है, मैं शान्त भी नहीं हूँ—मेरे सामने खुलकर मेरी आकांक्षा भी नहीं आती। यही तो है मेरे हृदय का सूनापन। यदि आकांक्षा से मैं परिपूर्ण होता,

तो फिर क्यों होती उदासी इस समय ! तब तो या सूक्ष्म स्वर्ग विहार होता या घोर तड़पन होती ! परन्तु यह उदासी किस काम की ! मैं नहीं चाहता उदासी। मैं नहीं चाहता मनहूसियत। या तो मुझे मिले शांति और अन्दरूनी सफलता—या फिर मिले भावात्मक ही सही—सुख विहार, केलि-क्रीणा और मादक सुगन्ध ! आज और इस समय मैं उदास हूँ—मैंने अपनी आकांक्षाओं को उभड़ने का मौका ही नहीं दिया। मैंने कहा उस आकांक्षा से क्या मतलब जो असम्भव हो, मूर्खों की कल्पना हो, हवाई महल का निर्माण हो। परन्तु मैंने अच्छा नहीं किया उस आकांक्षा को दबाकर ! अब तो अनजाने ही वह सुलग रही है, मुझे दहका रही है, मुझमें अजीब तड़पन है, अजीब अशान्ति है, सुख का लेश भी नहीं है, मैं हूँ—उदास, विकृत और मूढ़ !

अजीब है मेरे हृदय का हाहाकार, मुझे कुछ समझ में ही नहीं आता ! मैं विश्लेषण करना चाहता हूँ कि क्या कारण है मेरी अशान्ति का—तो मेरे सामने नजर आता है निरस हृदय, भावनाओं का अभाव और कुम्हलाई मानसिक शक्तियाँ। और जब मैं असहाय हो जाता हूँ, मेरे सारे साधनों का ह्रास हो जाता है—मेरी आँखें सजल हो उठती हैं। परन्तु जब आँखें सजल होती हैं तो सुख मिलता है, परन्तु शीघ्र ही आँखें फिर हो जाती हैं शुष्क, जड़ और चेतन रहित ! और तब फिर मेरा सुख काफूर हो जाता है। मुझे रुलाई भी नहीं आती, आँसू भी बड़ी मुश्किल से निकलते हैं, मुझमें हँसी का गुब्बार भी नहीं है—मैं हँसते-हँसते रो भी नहीं पाता हूँ। हँसी की लोट पोट तो मेरे लिए सपना मात्र है—मुझमें कुछ है तो केवल उदासी, केवल उष्णता और तुच्छ खोखलापन ! क्या है मेरा जीवन ! इस जीवन से तो मैं बाज आया—आकांक्षा ने मुझे कहीं का न रख छोड़ा ! न करूँ तो तड़पता रहूँ—

करूँ तो तड़पता रहूँ ! मैं क्या करूँ ? मेरा हृदय ही सर्वदा तड़पता है---उसका स्पंदन कभी रुकता ही नहीं ! हृदय का स्पंदन ही न हो तो संसार कहेगा—मैं जड़ हो गया – मैं इस संसार से विदा हो गया। परन्तु मैं जानता हूँ—मेरा सुख का स्पन्दन, मेरी भावनाओं का प्रकाश, और महान् महत्वाकांक्षा का कभी अन्त नहीं होता। मैं चाहे कहीं भी रहूँ—रहूँगा अशान्त ! मुझे सुख मिलेगा कहीं भी नहीं और मैं तड़पता रहूँगा—जन्म जन्मान्तरों में भी !

मेरी पीड़ाओं के मूल में केवल आकांक्षा ही मुख्य रूप से नहीं है। उसमें अन्य प्रकार की पीड़ाओं का भी आभास होता है। परन्तु आकांक्षा की पीड़ा अजीब होती है—उसमें आत्मा की तड़पन होती है, सूक्ष्म भावना का उद्वेग होता है और होती है उसमें अथाह जलन और पीड़ा ! परन्तु मुझे सर्दी गर्मी भी सताती है, मुझे अपमान और द्वेष भी सताता है, मुझमें क्रोध और असहायता की भी पीड़ा कम नहीं होती। फिर मुझे कोई कोड़ों से पीटे तो कराह उठूँगा। मुझमें व्याधि भी तो लगी ही रहती है। कभी बीमार हो जाता हूँ, तो कभी सिर ही फटा जाता मालूम पड़ता है। कभी पेट की बीमारी तो कभी आँख की लाली भी मुझे दहलाए डालती है। परन्तु मेरी तड़पन तो मेरे सुख में भी कम नहीं होती—मेरा मान, मेरी ख्याति और मेरी बड़ाई मुझमें मूढ़ा भाव और अहंकार का प्रादुर्भाव करता है। मेरा क्षणिक भोग भी बाद में समाप्त होकर उदासी का प्रादुर्भाव करता है। अमृत का प्याला भी बाद में जाकर विष का निर्माण करता है। मैं दुखी रहूँ तो रहूँगा ही, सुखी रहूँ तो भी दुखी ही अपने को पाता हूँ। परन्तु मैं चाहता हूँ मैं निरोग रहूँ। मेरा अपमान न हो। मुझमें गुणों का विकास हो। मेरे में कोई आकांक्षा न हो। मैं कर्म करूँ, केवल कर्म ! और फिर जितना

भी फल मिल जाए उसे चख लूँ। उसका सम्पूर्णतः भोजन भी कर सकता हूँ। परन्तु फिर भूल जाऊँ मैंने कभी किसी का स्वाद लिया था—और यदि फिर भूख लगे तो समझ लूँ, आज धार्मिक व्रत है, मुझे व्रत करना है—चाहे मैं भूखा मर जाऊँ—परन्तु मैं कभी यह आकांक्षा न करूँ—मेरी भूख कैसे तृप्त हो, मुझे भोजन में क्या क्या मिले—सुस्वादु पकवान, मिष्टान्न और चाट की चटनी!

३

कभी कभी सोचता हूँ—मैं कर्म योगी बन जाऊँ। परन्तु मेरी पीड़ा मुझसे छिपी नहीं है। चाहे मुझे कुछ मिले या न मिले—मेरी चाहत तो कभी नहीं कम होती। ज्यों ज्यों दिन बीतते जाते हैं, मैं उतना ही उच्छृंखल होता जाता हूँ। मेरा धड़कता हृदय मेरे सम्पूर्ण शरीर को भी अपने समान ही बनाए डालता है। और जब मैं उच्छृंखल हो जाता हूँ, तो मेरे में लड़कपन आ जाता है—मुझे यह भी ख्याल नहीं रहता—मुझे कहाँ पर कैसे व्यवहार करना चाहिए। उच्छृंखल होकर मेरा अंग संचालन, मेरे हाव भाव और मेरा सुन्दर शरीर भी उपहास्य और अनर्गल हो उठता है। फिर मेरी ओर से सभी स्त्रियाँ अपना मुख मोड़ लेती हैं। अपनी निराशा और बढ़ते हुए हृदय से मैं और भी उच्छृंखलता को प्राप्त होता हूँ। फिर मैं अपने से ही अपने पर बलात्कार कर बैठता हूँ—मैं उन कार्यों को भी कर जाता हूँ—जिसे शायद मेरी शान्तावस्था में कभी करने की कल्पना भी न करता—और उन घृणित कारनामों को फिर मैं अपना स्वभाव बना बैठता हूँ। मेरा दुःख समस्त संसार को दुःखी बना देता है। मेरी दीनता समस्त संसार को दीन बना देती है। मरी ज्वाला सभी को ज्वालामय बना डालता है। ठीक ही तो है। मैं डूबा तो जग डूबा। मेरी आकांक्षाओं का ही सत्यानाश हो चुका, तो फिर किसी अन्य की आकांक्षा

क्यों पूर्ण हो ! मैं दुःखो तो रहा, परन्तु संसार का दुःख ही फिर मेरे लिए मजा हो जाता है। मुझे आनन्द होता है जब मैं दुःखी प्राणियों का दर्शन करता हूँ—चाहे वह कलह से पीड़ित हों, या आकांक्षा से निराश और अपमानित हों, या अपनी प्रणय क्रीणा में वह ठुकराए हुए प्राणी नजर आते हों। क्या करूँ मैं नहीं बनना चाहता ऐसा घृणित हृदय या मस्तिष्क वाला व्यक्ति। परन्तु मैं बन ही गया हूँ—मैं इसे रोक नहीं सकता—क्योंकि मेरी आकांक्षा अत्यन्त ही बलवती है और मेरा नसीब मुझसे द्वेष करता है—इसलिए मैं भी समस्त संसार के सौभाग्य से द्वेष करता हूँ। मैं चाहता हूँ, मेरे साथ समस्त संसार मात्र अभाग्यवान हो जाय—न हो रति, न हो प्रणय, और न हो प्रेम का अस्तित्व मात्र।

संसार में दो आत्माओं का मिलन ही सर्वश्रेष्ठ वस्तु और असीम सुख का मूल श्रोत है। बिना दो आत्माओं के मिलन या प्रेम के यह संसार निरस, शुष्क और जीवन से रहित प्रतीत होता है। एक मैं भी अभागा हूँ, मैं नहीं जानता कि जीव से जीव का मेल कैसा होता है ? मैं देखता हूँ कितनी ही युगल जोड़ियों को, कितने ही प्रेमातुर और वार्तालाप करते हुए नवयुवक और नवयुवतियों को, फिर मैंने क्लबों में भी देखा है—कितनी ही युवतियों को पुरुषों के साथ सिगार का कश खींचते हुए। परन्तु मैं क्या करूँ ? मैं उसासें लेकर ही रह जाता हूँ। मैं न तो ईश्वर से प्रेम कर सकता हूँ, न कोई प्रेमिका ही नजर आती है, जिस पर मैं अपने प्रेम कोष को उड़ेल डालूँ ! मेरा भी भाग्य क्या है ? और फिर यदि मैं उन भाग्यवानों से द्वेष करूँ—उनके भाग्य पर कि, उनको दो जीवन से ओत-प्रोत प्राणियों के सुख सान्निध्य के असीम सुख का अनुभव हो रहा है और एक मैं हूँ अकेला—अकेला ही

जीवन की अमूल्य घड़ियों को गुज़ार रहा हूँ। क्या करूँ, समाज ही ऐसा है, मेरा भाग्य ही ऐसा है, फिर मेरा गुण भी उसी के अनुरूप है। मैं बुरा हो सकता हूँ, मेरे में गुणों का अभाव भी हो सकता है, मैं पुरुषार्थ से हीन भी नजर आता हूँ, परन्तु इन सबके होते हुए भी, मैं अपने चैतन्य को कैसे भुला सकता हूँ, मैं उसकी भोग लालसा को कैसे विस्मृत कर सकता हूँ—मेरा जीवन तो भोग प्रधान है—फिर मैं यदि घोर अशान्त नजर आऊँ तो इसमें मेरा क्या दोष ?

मुझे कुछ न कुछ सोचना ही होगा, मैं क्या करूँ ? एक उपाय सामने यह नजर आता है कि, मैं समस्त कामनाओं और भोग इच्छाओं से मुँह मोड़ लूँ, मैं भुला दूँ उन पार्थिव भोगों को भोगने वाले चैतन्यमय युगुल प्राणियों को—और क्योंकि मैं अकेला ही रहूँगा—इसलिए मैं अकेला ही अपने को संयम की अग्नि से भस्म कर डालूँ ! मैं नहीं होना चाहता उच्छृङ्खल और कुख्याति को प्राप्त युवक ! मैं नहीं चाहता मैं दुःखी तो रहूँ ही, उन सुखी प्राणियों को भी दुःखी बना डालूँ। क्यों न मैं अपने को स्वयं निर्मित प्रसाधनों से बाँध डालूँ ! फिर मैं देखूँ क्या होता है ? संसार की चकाचौंध से दूर एक युवक एकान्त में नजर आए और भुला दे समस्त कामनाओं को—जिसका इस समय उसमें गुब्बार होना चाहिए था—फिर जब इस नीरवता में भी उसका मन न लगे, वह चाहे वहाँ से भाग जाए, तो वह अपने पैरों में बेड़ियों को डाल ले, और वहाँ एक दिन दो दिन न रहे—वहाँ पूरे वर्ष, दो वर्ष और सात सात वर्ष तक रहे—परन्तु जब निकले तो संसार को प्रकाशित कर दे, अपनी प्रखर ओजस ज्योति से ! फिर वह देखेगा, वह स्वयं भ्रमर नहीं, समस्त संसार ही भ्रमर बन बैठेगा, समस्त सुन्दरियाँ ही भ्रमर का गुञ्जन करेंगी, और सायं

सूर्यास्त की बेला में जब उसकी कमल पंखुड़ियों के बन्द होने का वक्त आएगा, तो भ्रमरों का यह गर्व होगा, वह भी उसकी पंखुड़ियों में रात्रि का कारावास प्राप्त करें !

मैं सोच रहा हूँ यही, क्योंकि मेरी आकांक्षाओं का सत्यानाश हो चुका है। मेरी युवावस्था ने मुझे कहीं का न रख छोड़ा ! अब मैं जा रहा हूँ— अपनी समस्त आकांक्षाओं को ठुकरा कर, उनको पद दलित कर, उनको खण्ड-खण्ड कर धूल में मिलाते हुए ! अब मेरा चेहरा भी कोई रमणी न देख सकेगी। अब मैं शून्य में बैठा नजर आऊँगा—और फिर भी सोचूँगा अपनी आकांक्षा को—मैं एक ऐसी सृष्टि की कल्पना करूँगा, जहाँ नारी का अस्तित्व भी न हो, जहाँ का एकांगी जीवन ही सर्वत्र उदासी को प्राप्त हो—युवकों की दुनियाँ, युवतियों की दुनियां से उतनी ही दूर हो, जितनी मेरे लिए मेरी आकांक्षा मुझसे दूर है। फिर मैं देखता सृष्टि का मनोरंजन, फिर मैं देखता उसकी दिन-चर्या, फिर मैं अट्टहास करता अपनी नवीन सृष्टि की मादकता पर ! न होता वहाँ सुगन्ध, न होते भ्रमर और न ही दृश्य होते प्रेमी और प्रेमिका। जैसा मैं हूँ, वैसे सब होते, परन्तु मैं नहीं चाहता ऐसी सृष्टि को, क्योंकि मैं दयालु हूँ, और मैं चाहता हूँ, संसार में चाहे दो ही व्यक्ति हों, परन्तु हों सुखी, और उनके जीवन में नारी का सामंजस्य भी हो जरूर ही !

मुझे नहीं मालूम मेरे जीवन में नारी का मूल्य इतना अधिक क्यों हो गया है ? हाँ ! कभी था, परन्तु अब नहीं। अब मैं उस कोलाहल से दूर हूँ, उस रंगीनी से भी दूर हूँ, उस जीवन के कलरव से भी दूर ही हूँ। अब मैं सोच रहा हूँ, क्या सोचूँ ? काफी समय बीत चुके, काफी दिन भी चले गए, महीने भी हो चले, साल पूरा होने को है, शायद उसने भी अपना मुख मोड़ लिया,

और मैं सोच ही रहा हूँ, क्या सोचूँ ? मैं वर्तमान में पड़ा, वर्तमान में ही भूला नजर आता हूँ। न है मेरे सामने बाल्यावस्था, न है आने वाली प्रौढ़ावस्था की रूप रेखा। मैं नौजवान हूँ इस समय, रहूँगा भी समुचित काल तक, और मेरी आकांक्षा भी क्षीण हो चली है—परन्तु यदि कुछ बलवती हो रही है, तो वह मेरे हृदयका करुण क्रन्दन ! मैंने जीवन गुजारा निरस और शून्य ! किसी ने भी न देखा मेरे चैतन्य को ! अच्छा ही हुआ, मझे भी यह ख्याल न आया, किसी ने कुछ सोचा भी नहीं मैं क्या हूँ, कैसे हूँ, यहाँ क्यों पड़ा हुआ नजर आता हूँ ? मुझे खुशी है, मैं शान्त हूँ, मेरे में भावनाओं का उदय हो चला है, अब मैं पेड़, पत्तियों और लताओं से भी प्रेम करने लगा हूँ। पुष्पों की शोभा भी अब मेरे लिए स्वर्गमय प्रतीत होती है। मैंने एक वाटिका भी लगा रखी है, बीच में मेरी झोपड़ी भी नजर आती है, सारा काम अपने हाथों ही करता हूँ, फिर जीवन के भरण पोषण की भी चिन्ता नहीं है, मुझे, जो कुछ फलाहार या अन्न का उत्पादन कर लेता हूँ, उसपर सात्विक जीवन व्यतीत करता हूँ।

मैंने एक बार चाहा, क्यों न चलूँ, वापस, उस प्रवाहित दुनियाँ में, परन्तु मैं सहम गया। मैंने कहा नहीं ! और फिर से एक बार अपने पैरों में बेड़ियाँ डाल लीं। प्रवाह में शान्ति कहाँ ! मेरी आकांक्षाओं का तब पुनः जन्म होता ; और फिर मैं उच्छृङ्खल हो जाता, कामनामय और दीन व्यक्ति नजर आता। इस समय मेरे में तेज है, मेरे में कला है, मेरे में सुख का लेश भी है, मैं आज मुस्कुराता भी हूँ और दिल खोल कर हँस भी लेता हूँ। कभी झरने के पास जाकर बैठ जाता हूँ—और घण्टों बैठा ही रह जाता हूँ—मुझे नहीं मालूम मेरी मंजिल क्या है, मुझे यह भी नहीं मालम संसार को

विभीषिकाएँ क्या हैं ! हाँ, यदि मेरा पेट न भरता तो अवश्य मैं छटपटा पड़ता, परन्तु भाग्य ही है, मुझे ऐसी नीरवता प्राप्त हुई, जहाँ किसी भी संसारी प्राणी ने आने का दुःसाहस नहीं किया। मैं अन्न बिखेर देता हूँ, तो बालियाँ निकल आती हैं, शीत में आग जला लेता हूँ, और मृग-छालाओं का वस्त्र भी कितना सुहावना प्रतीत होता है। मुझे अब मालूम हुआ है, मैं ही संसार का सबसे भाग्यशाली पुरुष हूँ !

मुझे यह याद नहीं है, मैं कब यहाँ आया था, और क्यों आया था। मुझे अब कहीं जाना है या नहीं, यह भी मुझे नहीं मालूम। मेरी कुछ चाह भी है, यह कैसे बताऊँ ? मुझे ईश्वर की भी याद नहीं आती, क्योंकि मुझे कोई प्रोत्साहन देने वाला नहीं है। मुझमें ईश्वरभक्ति की प्रेरणा भी नहीं दिखायी देती। कोई धर्म गुरु भी तो यहाँ नहीं हैं, जो मुझे प्रेरणा दे, ज्ञान दे, और मार्ग को दिखावे—तुम्हें ईश्वर-भक्ति करनी ही चाहिए। फिर न ही यहाँ है ईश्वर भक्ति, न है यहाँ स्त्री की केलि-क्रीड़ा। फिर भी मैं जीवन से ओत-प्रोत हूँ। और इसी प्रकार रह भी सकता हूँ—जीवन भर। कभी धूप में पड़ा रहता हूँ तो कभी सघन वृक्ष की छाया में, कभी थोड़ा टहल लेता हूँ, तो कभी पुष्पों को गूंथ कर माला भी बना डालता हूँ। मैं बैठा हुआ था, अनमना, मुझे सरोकार भी नहीं था—संसार के किसी भी प्राणी से। मैं सुखी भी था—क्योंकि मैं अत्यन्त ही दुखी होकर ही यहाँ आया था। मैं था पूर्ण युवा, मेरा शरीर भी सुगढ़ और दमकता था कान्ति से, फिर मैंने आधुनिक दुनियाँ भी देखी थी, दीनों की भाँति ! मैंने उच्च शिक्षा भी पाई थी—इस प्रकार मैं सभ्य भी था। परन्तु एकान्त में आकर चाहे मैं असभ्य भले ही रहा हूँ—परन्तु मेरे में अजीब शान्ति थी। मैं अब इस शान्ति को छोड़ना नहीं चाहता था।

परन्तु मुझे क्या मालूम था—मेरे साथ मेरा जीवन ही अठखेलियाँ कर रहा है। एक दिन मैं आश्चर्यचकित हो गया, जब मेरी आकांक्षाओं का भूकम्प हो गया, मानो ज्वालामुखी फूट पड़ा हो, सारी पृथ्वी दहल पड़ी, मैं रोमांचित हो उठा। मेरे सामने देवलोक की अप्सरा खड़ी नजर आ रही थी। मुझे काटो तो खून नहीं।

४

मैं रोमांचित बैठा ही रहा अपने स्थान पर ! परन्तु देख रहा था अपने वास्तविक सपने को। मैंने अपनी आँख भी मीच ली। मैंने अपने को चिकोटी भी काट कर देखा। परन्तु फिर भी खड़ी ही रही, मुस्कुराती। उसका विमान भी दूर ही खड़ा था। और वह आयी भी थी, तो अकेली। न थी उसकी सहेली, न ही उसका प्रेमी! परन्तु वह क्यों आई यह मैं क्या जानूँ ? दो चैतन्य का साक्षात्कार था। फिर चैतन्य भी ऐसा जो एक में दूसरे को भूल जाए। जिसमें असीम सुख की लालसा छिपी हो। पता नहीं कैसा आकर्षण हो जिसके अन्दर! मानों मेरी रसना तृप्त हो रही थी। मेरे कानों में मधुर वीणा रस घोर लाई हो। मेरी घ्राण शक्ति भी भ्रमर का आनन्द ले रही हो। मानो मैं मधु सरीखा मधु का संचय कर रहा था, मेरी आँखें भी उस अपूर्व दृश्य का आनन्द उठा रही थीं। मैं बैठा ही रहा मूढ़ व्यक्तियों की भाँति। मेरी नीरवता मुझसे छिन चुकी थी। मेरी शान्ति भी साँस रोक रही थी—मेरा दम ही घुटा जा रहा था। परन्तु कितनी शोख थी, वह सुन्दरी! उसने मेरे गले में अपने बाजुओं को डाल दिया। मैं आश्चर्य चकित हो गया, उसकी इस गुस्ताखी पर! वह जानती थी मैं इसे पसन्द भी अवश्य करूँगा—और इतना करूँगा कि तन मन प्राण को भी विसार दूंगा !

प्राणी का जीवन है राग। फिर इस राग में क्या संकोच या भय ! दो प्राणियों के असीम भोग में प्रपंच भी क्यों हो ? मुझे आकांक्षा है, मैं भोग भी चाहता हूँ, मैं नन्दन कानन में विहार करना चाहता हूँ—फिर दूसरे को भी यही इच्छा है, रमणी भी तो पुरुष का अस्तित्व चाहती है, मैं भी ऐसा ही युवक हूँ। मैं भी नायक का खेल खेलना चाहता हूँ। मैं स्वयं चाहता हूँ कि मुझे कोई नायिका भी मिल जाये। पर यह दुर्भाग्य है—न मुझे मिलती है नायिका और न नायिका ही मुझे पाती है—क्योंकि दोनों के बीच में दीवाल जो है—और वह है कृत्रिम संस्कार—जो बरबस ही मनुष्य की आकांक्षाओं को कार्यरूप में नहीं परिणित होने देती। परन्तु अप्सरा तो अप्सरा। उसने मेरे गले में हाथ डालकर–मुझे आनन्द विभोर कर दिया—कम से कम मैं ऐसा कभी न कर सकता था—किसी अजनबी स्त्री से—चाहे वह एकान्त में भी क्यों न रहती।

अप्सरा का नाम था राका और वह मानव तनुधारी तो थी ही—परन्तु अलौकिक सुन्दरी और तीव्र सुगन्ध की प्रसारिणी भी थी। उसके नयनों का चमत्कार भी अनोखा था और उसकी शोख अदा निराली थी। साधारण मानव राका पर जल भुन जाता—वह दूर से ही राख नजर आता—राका तक पहुँचने की उसमें क्षमता ही न होती। परन्तु एक था मैं—मुझमें आकांक्षा तो थी—असीम सुख लालसा तो थी—परन्तु वह भावात्मक थी पार्थिव नहीं। मैं आनन्द चाहता था, आत्माओं का मेल—मैं रमणी सङ्ग चाहता था—मुझे क्षणिक सुख नहीं चाहिए था—जब सर्वत्र उदासी होती, जीवन रागहीन नजर आता—न होता उत्साह, न होती जीवन की लालिमा और फिर इच्छा होती—न देखूँ कभी उस राका का चेहरा मात्र ! राका भी ऐसी बोदी नहीं थी जो मेरा

खिलौना बन जाती—मानो वह जड़ थी, उसमें उसकी भावनाओं का उद्वेग ही नहीं था—वह नहीं चाहती थी किसी पुरुष के साथ केलिक्रीड़ा—जब कि यह केलिक्रीड़ा चलती अनन्त काल तक, और प्यास लगी ही रहती—उसे बुझाने का कोई साहस भी न करता।

कितना! आनन्द है, प्यास का और जब वह न बुझे! कितना आनन्द है उस शक्ति का जो कभी भी शिथिल न हो! कितना अरमान है उस जोश का जो अनन्त हो! फिर उस राग में भी आनन्द रहेगा—जो निर्दोष हो, जिसमें उपरोक्त सभी गुणों का लेश हो, जीवन भर यह राग कायम रहे! केवल हो आकांक्षा मात्र और आकांक्षा कभी भी पूर्ण न हो। यही तो है आकांक्षा का मूल्य! यही तो है उसकी सार्थकता! हाँ, यदि आकांक्षा न हो तो फिर कैसी यह क्रीणा! फिर यह कैसी खिलखिलाहट! फिर यह कैसी शोख अदा! इसके अन्दर एक प्रज्वलित अग्नि है। चाहता हूँ अग्नि से लिपट जाऊँ। उसी में विलीन हो जाऊँ। फिर न मुझे अग्नि देखे, न मैं अग्नि देखूँ! फिर भी मैं उस लौ शिखा से दूर ही रहता हूँ! यह मेरा गुण है, मेरी क्षमता भी है। और यही मेरा विवेक मुझे स्वर्गीय सुख प्रदान करता है। मुझे असीम सन्तोष होता है—ज्यों-ज्यों मेरी कामना, आकांक्षा प्रज्ज्वलित होती है, त्यों-त्यों मेरा विवेक भी दृढ़ होता जाता है—क्योंकि मुझमें असीम भोग लालसा है।

राका जानती थी, मेरे अलौकिक स्वभाव और जीवन के रोग को। मुझे वह समझ गई थी—मैं जीवन का सच्चा कलाकार हूँ। शायद वर्षों से वह मेरे ऊपर चक्कर काट कर मेरा निरीक्षण भी कर रही थी। देख रही थी, मेरी दिनचर्या को! और अब उसे भास हो रहा था—देवलोक के देव भी उसे असीम सुख प्रदान न कर सके थे—क्योंकि देवलोक के पतंगे भी उसके

सामने आकर भस्म हो चुके थे। और लौ तो दमकती ही रही निरन्तर—उसकी तीव्र ज्वाला को कोई भी शान्त न कर सका! और तभी तो आई थी—वह मेरे पास। शायद मुझसे उसे शान्ति की प्राप्ति होती। मैं उसे ढक लेता अपने बाहुओं से—और जब घोर आँधी और हवा के झोंके भी आते—जब कि जंगलों में आग लग जाती—शक्तिशाली पेड़ भी उखड़ जाते और समुद्र में जहाजों का जीवन भी खतरे में पड़ जाता—समुद्र अपनी सीमा को लांघने का भी प्रयास करता—जब सर्वत्र हाहाकार होता—मैं उस दीप शिखा को छिपा लेता अपने आश्रय में और जब प्रातः होता—तो वह मुग्ध हो जाती मुझ पर और हम केलिक्रीणा करते—नौका विहार करते—झरने के झर-झर को देखते और हम संसार में सुखी रहते—हमारा सुख हम ही जानते—न जानता कोई दानव, न मानव और न देव ही!

मुझे राका का ख्याल कर मानव का भी ख्याल हो आता है। मानव का जीवन राग कितना क्षणिक है। फिर उसमें कितना दिखावा है। उसमें न है लड़कपन सी शोख अदा—न है असीम भोग लालसा और न है दो प्रेमी हृदयों का मिलन। मैं अपने जीवन पर ही नजर डालता हूँ, तो मेरी आँखें छलछला पड़ती हैं। मैं इस समय राका के साथ विहार कर रहा हूँ, परन्तु मैं याद कर रहा हूँ, उस जीवन की जब मैं आज से बिलकुल दूसरी दुनिया में था—क्षुद्र, उच्छृंखल और आकांक्षा से परिपूर्ण! मैं स्वर्ग भी भ्रमण कर चुका हूँ उस अप्सरा के साथ—मैं बताऊँगा भी उस स्वर्ग के विहार का वर्णन। परन्तु इस समय तो मुझे याद आती है—मानव के कृतिम शिकंजों की! क्यों नहीं मानव बन जाता देवता! क्यों नहीं वह हो पाता शान्ति और सुख की प्रतिमा! क्यों नहीं होती उसमें भोग की असीम लालसा! वह क्यों चाहता है क्षणिक

सुख ! क्यों वह बन जाता है मूढ़, आलसी और नशैल ! परन्तु जीवन का असीम सुख कहाँ है, मानव में ! आकांक्षा कहाँ है, मानव में ! आकांक्षा तो तभी तक है, जब तक वह पूर्ण न हो, फिर जब पूर्ण हो गई तो फिर वह आकांक्षा नहीं ! परन्तु हरदम की आकांक्षा और हरदम की पूर्ति भी तो आकांक्षा को कहीं का नहीं रख छोड़ती। एक मेरी आकांक्षा है—मेरी आकांक्षा चिर नवीन, अखण्ड और अलौकिक है। इसीलिए तो मैं आकांक्षा को इतना महत्व देता हूँ—मेरा जीवन अध्याय ही मानों आकांक्षा से ओत-प्रोत हो। मैं जीवन को ही आकांक्षा के नाम से पुकारने लगा हूँ।

मुझमें आकांक्षा का महत्व तो तब आया—जब मेरी भोग लालसा की पूर्ति हुई। पूर्ति ही क्यों, जब उसमें घृत की आहुति हुई। राका न आती तो, मैं नहीं जानता आकांक्षा क्या है, जीवन का राग क्या है—उसे कला का रूप कैसे प्राप्त हो सकता है ? मेरी छिपी शक्तियाँ तो राका के दर्शन पर ही खुलीं, परन्तु राका भी देवलोक को वारांगना थी। वारांगना का अर्थ यह कि वह भी देवलोक की निराली थी। उसी प्रकार जिस प्रकार मैं हूँ। उसमें भी असीम भोग की लालसा थी। देव भी मुझसे ईर्षा करते थे—उन्होंने मुझ पर षणयंत्र भी रचा—परन्तु राका ने मेरी सर्वदा रक्षा की। मैं राका को कभी नहीं भूल सकता, न वह मुझे कभी भूल सकती है। परन्तु हमारा मिलन भी स्थाई नहीं था—राका मुझे अपने पास अनिश्चित समय के लिए नहीं रख सकती थी। फिर भी वह याद रखेगी अपने देवलोक के संस्मरण को—और मैं भी जब तक रहेगी मेरी जिन्दगी—याद रखूँगा उसे —क्योंकि शायद ही मैं पाऊँ वैसी रमणी—जो स्वयं में पूर्ण थी—जिसमें प्यास को रोकने की अजीब क्षमता थी, जो मृग तृष्णा की शिकार होकर भी प्रसन्न थी। उसने भी जीवन

का असीम आनन्द लिया। मैं भी तृप्त न हुआ, न वह ही तृप्त हो सकी—इसीलिए तो मैं राका को याद करता हूँ! और चार आँसू बहाता हूँ—राका भी—भोग शीला—पता नहीं कहाँ हो, अब कौन जाने उस सपने भरी याद-दाश्त को?

५

अब भी मैं अकेला हूँ। मैं वापस लौट आया हूँ संसार में। यहाँ पर फिर वही शोर गुल, भाग दौड़ और क्षणिक सुख का बोल बाला है। मेरे भेद को कोई नहीं जानता—परंतु मैं देख रहा हूँ सभी कुछ! बाजार में उस रमणी को भी देख रहा हूँ, जो एक रमणी के साथ और है—उसने मुझे भी देखा, मेरे समान न मालूम अन्य कितनों को देखा—परन्तु किसी के गले में हाथ न डाल सकी—क्योंकि वह जानती थी इसका नतीजा क्या निकलेगा। समाज उसे कुलटा कहेगा—और मैं भी शायद उसे धोका दे भागूँ। इसीलिए तो संसार में यह प्रपंच है। फिर संसार में भूख है, ऐश्वर्यों के साधन हैं, आपसी रीति रिवाज है, आत्मरक्षा और उपहारों का आदान प्रदान है—इसके अतिरिक्त अन्य भी अनेकों वस्तुएँ हैं—जो मनुष्य इन सभी को नहीं प्राप्त कर सकता उसे कोई रमणी क्यों वरण करेगी--फिर वह समाज में रह भी कैसे सकेगी? सामाजिक प्राणी तो समाज में ही रहता है। कौन है जो मेरी तरह जंगलों में भाग जाता है, और राका के साथ विहार करता है—जहाँ न कोई देखने वाला होता है, न कोई जलने वाला, न द्वेश से भड़कता और आकांक्षा करता हुआ समाज! फिर मैं जंगल में गया भी वापस भी तो आ गया। मुझे भी तो सामाजिक बनना ही पड़ा! यदि सामाजिक न बनता तो मैं दुःखी तो रहता ही, अपने समान

अन्य रमणी को भी दुःखी करता। क्योंकि इस प्रकार एक पुरुष का अयोग्य, असामाजिक और उच्छृङ्खल होना, किसी एक स्त्री की निराशा होती, क्योंकि उसके सामने वरण करने योग्य पति की कमी नजर आती! मैं चाहता हूँ मैं सामाजिक बनूँ। बनूँगा भी। कहीं नौकरी करूँगा, या स्वतन्त्र व्यवसाय ही करूँगा। शायद मजदूरा बन सकता हूँ, या फौज में भी दाखिल हो सकता हूँ। फिर मैं शादी करने योग्य हो जाऊँगा। फिर मुझे कोई भी स्त्री वरण कर लेगी। परन्तु•••

मेरी परेशानियाँ कम नहीं हैं, क्योंकि मैं स्वयं दूध का जला हूँ! मैं जानता हूँ मेरी आकांक्षा क्या है। मेरे पास सब कुछ है, मैं शान्त भी हूँ, और मुझे इस समय रमणी की खोज है। मैं चाहता हूँ कोई सुयोग्य मिले तो अच्छा! राका की भी याद मुझे आती है, जो मुझे अपूर्व शान्ति प्रदान करती है। मैं चाहता हूँ प्रेम-विवाह करूँ। परन्तु अब वह नहीं हो सकता। कुलीन स्त्रियाँ प्रेम-विवाह से भय खाती हैं। माता-पिता, अभिभावक ही उन्हें सुयोग्य लड़के की तलाश कर देते हैं। फिर माता-पिता ही जहाँ पर शादी करते हों, मेरा प्रेम कैसे निभ सकता था? मैं किसी स्त्री की परख तो तब कर सकता था, जब मैं सभी स्त्रियों से सुगमता से मिल पाता, उनसे हँस भी लेता, उनके साथ विवाह भी कर सकता। परन्तु यहाँ का ढांचा ही भिन्न प्रकार का है। मेरे माता-पिता कहते थे शादी कर लो, क्योंकि कितने ही अपनी लड़की देने को राजी थे। परन्तु मुझे तो राका के साथ विहार करना था। अब न रहे माता पिता, न कोई अभिभावक ही, फिर मेरी शादी कौन करे, और किस प्रकार हो? प्रेम का मेरा स्वप्न कटु सत्यों को देख कर धूमिल हो गया। फिर भी मैं हताश

नहीं हुआ हूँ। मैं अकेला कभी नहीं रहूँगा। मेरी उम्र भी तो अभी विशेष नहीं है। ३५ साल का युवक ओर अकेला कैसे रहूँ ! ठीक ही तो है, मेरा परिचय धीरे-धीरे बढ़ रहा है। मुझमें समाज में घूमने की क्षमता भी आ रही है। मेरे अब कितने ही परिचित और मुलाकाती हो गए हैं। मेरे मित्रों की भी संख्या बढ़ रही है। कितने ही बुजुर्ग भी मेरे परिचितों में हैं, जो अपनी कन्या के लिए योग्य वर ढूँढ़ रहे हैं। मैं भी किसी योग्य व्यक्ति से कम नहीं हूँ। मैं भी किसी के दिल को अच्छी तरह लुभा लेता हूँ। और इसीलिए तो आज कितने ही अभिभावक मेरे पीछे पीछे घूम रहे हैं—मेरी लड़की से शादी कर लो—उसका चित्र ऐसा है—है सुन्दरी ! परन्तु असुन्दर का क्या होगा ? कहीं न कहीं होगा ही ? ईश्वर के विधान को ही मान लो।

मैंने भी लाटरी में हाथ डाल ही दिया। मुझे जैसी स्त्री मिल गई, वह मेरे गले में जा लटकी ! वह अब जीवन संगिनी थी। मैं यह न जान सका, उसका स्वभाव कैसा था, वह मृदुभाषी थी या कठोर—उसमें चरित्र कैसा था—लोलुप या शान्त ! फिर उसकी सहन शक्ति का भी मुझे भास न हो सका—वह विलासी है या सात्विक। लेकिन इससे क्या होता है ? क्या मेरे में ही जीवन-जीवन है—उसमें नहीं ! क्या उसने न सोचा होगा वह असहायों की भांति कहाँ जा रही है ? उसका पति शराबी है या मूढ़। वह सनकी है या क्रूर और केवल अपना ही विलास और भावावेष देखता है, या मेरा भी। परन्तु माता-पिता भी तो मूर्ख नहीं। उन्हें ज्यादा मालूम है, मेरे भावी पति के विषय में। तभी तो उन्होंने चुना था उसे। और वह जानते हैं, वह हसमुख है, वह नेक और हमदर्द है। उसमें भावुकता और दुनियादारी भी है। इसके साथ ही, वह यह भी जानते हैं, मेरा पति बस चुका है, और मेरा

भरण पोषण भी कर सकेगा, मुझे विलासी भी बनाएगा—और मैं सुखी रहूँगी !

माता-पिता की खोज, संसार के प्रत्येक पुरुष, स्त्री का जोड़ा बाँध ही डालता है। परन्तु फिर भी मैं पुरुषों की तरफदारी इसलिए करता हूँ क्योंकि पहले तो स्वयं मैं पुरुष हूँ फिर मैं यह जान ही नहीं पाता, न किसी पुरुष के माता पिता ही जान सकते हैं—स्त्री कैसी है—उसका भविष्य कैसा होगा ! लोभी स्त्री और शुष्क मिजाज—पुरुष के जीवन को नारकीय रूप दे सकता है। मैं तो देवलोक भ्रमण कर चुका हूँ—मैं क्यों चाहूँ ऐसी नारकीय यात्रा। फिर भी कुलीन परिवार की नवयुवती तो कुलीन ही निकलेगी। यही तो है वह पुरुषों की आशा—जिससे वह आँख मूँद कर गाँठ बाँध लेते हैं—फिर कभी विलग नहीं होना चाहते। और यही कारण है—प्रत्येक बच्चे और बच्चियों वाला परिवार कुलीन होने का जन्म जन्मान्तरों, पीढ़ियों के क्रमों में भी कुलीन होने का परिश्रम करता चला आता है। वह दावा करता है, उसमें कुलीन रक्त है—इसीलिए भावी वधू भी कुलीन है—वह लोलुप नहीं, वह द्वेषी नहीं—वह कामुकता की रूपान्तर भी नहीं।

मैं एक ऐसी दुनिया में था, जहाँ के रीति रिवाज अनोखे थे। मैं देवलोक के न्यारे रूप और अदा को भी देख चुका हूँ। तुलना करता हूँ तो कहीं का नहीं रहता ! क्या चुनू कुछ समझ में नहीं आता—दोनों पद्धतियाँ ठीक हैं—परन्तु अपने अपने स्थान पर। मैं क्या चाहता हूँ यह कैसे बताऊँ ? मुझे तो समय के अनुसार ढलना ही पड़ा। मेरी नयी पत्नी सजनी के पायलों की रुनझुन से मुझे देवलोक की वीणा याद होने लगी। मैंने सजनी को अपनी राका समझ लिया। सजनी राका से कम नहीं थी। यह भी जीवन था—अपने परिमित

साधनों के साथ—जहाँ पर कर्म था, विभीषिका थी—फिर भी सजनी साथ थी —मेरी विभीषिका में वह भी हिस्सा बटाती थी। मेरे दुःखों में वह सम्मिलित हो—उसे हल्का बना डालती थी। मैं भूल गया स्वर्ग को और भूल गया राका को! मैं फिर कभी न जाऊँगा जंगल में। क्योंकि मुझे संघर्षमय जीवन पसन्द है। परन्तु याद आ ही जाती है राका की। कैसे भूलूँ उस अनुपम सौन्दर्य और अगाध प्यास को। अभी भी उस प्यास की याद मात्र से मचल पड़ता हूँ। सजनी ने तो मेरी प्यास ही जैसे बुझा दी। न है वह केलिक्रीण, न है वह मादकता! थका रहता हूँ। उसकी गोद में सो जाता हूँ–क्या जानू् प्यास क्या है, मादकता क्या है—सपने देख लेता हूँ कभी कभी राका का। साकार हो उठती है मेरे सामने वह। मानो मेरा आह्वान करती हो—नये जन्म के लिए।



६

मैं अभी अनमना सा बैठा ही था, बटवृक्ष भी अपनी छाया दूर-दूर तक फैलाए हुए था, राका भी तो लेटी थी, मेरी ओर एक टक निहारती हुई, मानों मुझे पी जाना चाहती थी—मैं क्या करता उसकी आंखों का ? मुझे क्या मिल जाता राका से ! राका थी तो सुन्दरी और मुझसे केलि-क्रीणा भी करती थी—परन्तु वह मुझसे घुल मिल चुकी थी—मानों वह मेरी सहचरी हो या प्रिय सखी। हाँ ! राका मेरी जीवन श्रोत हो रही थी। मेरे में जीवन का संचार करती हुई मादक बना डालती थी। मैं उसमें मोहित हो जाता था—अपनी सुध-बुध खो बैठता—कितना था निष्कलुष वातावरण ! मेरी आकांक्षा मुझमें आनन्द की हिलोरे पैदा कर रही थी—और राका लता की कुंज में छिप जाती तो मैं अनमना हो उठता—उसकी खोज में चिल्ला डालता था—जब तक कि वह खिलखिला न पड़ती। परन्तु अभी तो हम झरने के किनारे चहल कदमी कर रहे थे—और सोच रहे थे क्या है हमारा जीवन और क्या है सुख की चाह। नारी बिना नर और नर बिना नारी। कितनी अधूरी कल्पना है ! यदि ऐसा हो जाय तो न रहे आकांक्षा, न रहे मेरा काल्पनिक सुख !

राका सुना रही थी अपनी पूर्व गाथा और सुना रही थी--संसार में सुख के अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं। मैं भी सुना रहा था, अपनी दुःख गाथा और कह रहा था संसार में दुःख के सिवा अन्य कुछ है ही नहीं। परन्तु इससे क्या होता है ? सुख और दुःख मिल कर ही तो जीवन बन जाता है। राका और मैं आपस में जीवन से ओत-प्रोत हो रहे थे। जब कि राका मुझसे कह रही थी, कि चलो स्वर्ग की सैर करा लाऊँ। और जब कि विमान की गति न मालूम कितनी थी—देखते-देखते ही हमारा केलि-क्रीणा का स्थल ओझल हो चुका था—और लो ! राका इंगित कर रही थी—वह है जगमगाता अट्टालिकाओं से सुशोभित इन्द्र लोक जो उद्यानों से भरा पड़ा है—और वहाँ सुख क्या है जानते हो ? केलि-क्रीणा, मधुर स्पर्श—जब कि प्रेमी और प्रेयसी एक दूसरे में भूल जाते हैं।

मैं सहम रहा था—कैसा होगा अजनबी स्थान—परन्तु राका के गालों पर तो लाली आ रही थी—सभी परिचित देखेंगे एक टक उसे—कहाँ से पकड़ लाई शिकार अपना—जो देवों से भी ज्यादा भाग्यशाली और जो विलासी तो इतना कि विलास ही बस जानता है। राका की चाह अतृप्त ही रही। वह कह रही थी अभी तक मुझे सुयोग्य देव भी न मिला जो मेरी तरह हो, इसीलिए मैं तुम्हें नर लोक से उठा लाई। देखो यह है देव लोक। उड़ा लो मौज जो कुछ उड़ाना है। परन्तु मुझसे विलग मत होना क्योंकि यदि विलग हो जाओगे—तो ईर्षा में कोई देव ही तुम्हें उठा ले जाएगा, या फिर कोई देवांगना ही तुम्हें अपने आँचलों में छिपा लेगी। फिर मैं कहाँ ढूँढूँगी तुम्हें—इतना बड़ा स्वर्ग लोक ! फिर मैं असहाय हो जाऊँगी—अनाथ भी ! मेरे जैसा अभागा फिर कोई भी न होगा यहाँ !



—लेखक

सुरम्य घाटियाँ, मन्द-मन्द सुगन्ध, शीतल परन्तु मोहक समीर की बयार, और तो और, सुहाना दृश्य जब कि रंगीनी ही सर्वत्र थी—मुझे याद ही न रहा—पृथ्वी पर भी मैं रह चुका हूँ। राका का साथ मेरे लिए अपूर्व था। और यह है केलिक्रीणा का प्रमुख स्थान। यहाँ पर वह था कला का प्रतीक जो वीणा के तारों से झंकृत हो रहा था। स्वर लहरी गूँज कर अजीब सन्नाटा किए हुए थी—और पड़े थे—इठलाते, मदिरा से परिपूर्ण अपनी सुध भी खोते हुए कितने ही युगुल जोड़े—जिनकी प्यास थी अतृप्त और जो बड़ी मुश्किल से अपनी प्यास को बुझा पाते थे। उनमें तड़पन थी प्यास की—और यही था उनका सुख। परन्तु मुझे याद हो आता है—मेरा सुख। इसके साथ ही राका की भी याद आती है—तो मैंने देखा वह भी मदिरा पी रही थी—मदिरा ही क्यों वह सोमरस था—उसने मझसे कहा—लो! परन्तु मैंने कहा ना! और वह ढुलकाती ही गई!

जब कि उसकी आँखें लाल हो उठीं, उसमें अजीब मादकता का प्रादुर्भाव हुआ। उसके सामने मानो तारे फुलझड़ी बनकर छूटने लगे। परन्तु वह मादकता भी चैतन्यमयी थी—वह तामस न होकर सात्विक थी—जब नवीन कल्पनाओं का प्रादुर्भाव होता था, जब आकांक्षाओं का भी प्रजनन होता था और ऐसा मालूम पड़ता था—शरीर है हल्का—उड़ चलेगा आकाश में—मादक सुगन्ध को पाकर वह भी सुगन्धित हो उठता था—जो चाहता था—भ्रमरों को पकड़ कर उनसे ही गुलजार किया जाए। राका के लिए मैं भी एक भ्रमर था—वास्तव में मैंने राका का रस खूब लूटा। राका मानो निरस हो चली—परन्तु मेरी रस पूर्ण तृप्ति न हो सकी।

राका यदि सोमरस न पीती तो ज्यादा अच्छा था। क्योंकि सोमरस पीने

के बाद उसमें चेतना का तीव्र प्रवाह होता था। वह अपनी सन्तुलित अवस्था से ऊपर होकर मानसिक क्रीणा करने लगती थी। कितनी बार वह बेसुध हो जाती थी विलास में—जब कि उसकी आँखें पथराई हुई होती थीं—वह मूढ़ सी दिखने लगती थी—अपने अपलक और तिरछे नयनों में। परन्तु मैं जानता था—उसमें असीम सुख का भास हो रहा है—और वह मुझसे बढ़ कर किसी से प्रेम नहीं करती। राका की प्यास कभी न बुझी, राका की ओजस शक्ति भी अपूर्व थी—और वह मुझ जैसे अद्वितीय विलासी युवक को पाकर निहाल हो चुकी थी।

मुझे आश्चर्य होता है, विलास की भूमि! जहाँ न तो था कोई समाज! न उसका बन्धन! न था जहाँ रोजी और रोटी का सवाल और न ही था आत्म रक्षा या आपसी द्वेष! जहाँ थे केवल अनन्त सुन्दरियाँ और असंख्य देव! फिर था वहाँ सोमरस—जिसे सभी पीते थे—हमेशा पीते थे—और उसी की सुध में खोए रहते थे। उनके जीवन का सुख था केवल नर नारी! और नर लोक में भी तो नर नारी का अमूल्य मूल्य है। जब मैं रजोगुणी बनता हूँ—तो मुझे ख्याल हो आता है—स्त्री का! जब मैं सत्वलोक में भ्रमण करता हूँ तो मुझे नारी का सुख सान्निध्य ही अतुलित सुख प्रदान करता है। मैं पूर्ण सात्विक था, राका भी ऐसी ही थी—सम्पूर्ण देवलोक भा ऐसा ही था! और यही कारण था वहाँ सुख के बाद दुःख नहीं रहता था—अमृत के बाद विष नहीं होता था—क्षणिक उन्माद और विलास के बाद यहां की भांति घोर उदासी, शुष्कता और शून्यता न थी। वहाँ का विलास अन्य ही था—कैसे बताऊँ! मानव के लिए वह अलौकिक और अजूबा होगा! मेरे लिए भी! परन्तु मैं भिन्न था—राका भी भिन्न ही थी—और जब हम हाथों में हाथ दिए टहल रहे थे—

अपूर्व सुख ! शान्ति ! समा ! और आनन्द था। राका ने पूछा कैसा लगता है ?

अलौकिक, अनोखा ! यह मेरा उत्तर था—संक्षिप्त पर हृदय के उद्‌गार थे। राका मुग्ध हो उठी ऐसे उत्तर पर ! और उसने अपने बाहुओं को डाल दिया मेरे कण्ठमाल में ! बैठ गई बेसुध होकर ! मैं भी बैठा ही रहा—क्या करता मेरी आकांक्षा असीम थी ! राका ने पूछा तुम क्या हो ? मुझे आश्चर्य होता है—तुम इतने निराले क्यों हो ! वास्तव में तुमने मुझे असीम सुख दिया है—क्योंकि सचमुच में तुमने मुझे कोई सुख नहीं दिया ! तुम एक ऐसी मदिरा हो, जिसे मैं पीना चाहती हूँ—परन्तु पाती नहीं। यही तड़पन मुझे सुख प्रदान करता है। परन्तु ऐसा कब तक चलेगा। मैं सन्न रह गया। परन्तु फिर भी मेरी आकांक्षा बनी रही। मैंने उसे हँसी में उड़ा डाला—उसके बालों को सवारने लगा और उसके ओठों पर मधुर थपकियों को दे डाला। परन्तु मैंने उसकी बातों का जवाब न दिया और न मैंने उसके प्यास की पूर्ति ही की। क्या यही है जीवन ! अगाध चाह ! असीम प्यास ! न बुझे कभी ! याद में ही विभोर रहे। परन्तु सन्तोष रहे, मेरे पास मधुर मदिरा अवश्य है—उसका मादक स्पर्श भी है। परन्तु मैंने यह न जाना वह कैसा है, क्या है ? यही तो थी मेरे में अलौकिकता, ऐसा क्यों था ? मेरी समझ में कुछ कुछ आ रहा है।

राका का आकर्षण मेरी ओर निरन्तर बना रहा। मुझे याद है—देवांगना ही देव को ठुकरा रही थी। देव भी देवांगना को ठुकरा रहा था। नवीन सान्निध्य का अपूर्व बोल बाला था। परन्तु वह था स्वर्ग लोक ! स्वर्ग लोक में अनुचित भी क्या था। अनुचित तो है मर्त्यलोक में, जहाँ पर मानव का सुख

उच्छृंखलता नहीं, संयम होता है। जहाँ पर भरण पोषण के लिए एक स्थान पर बसना और कठोर मेहनत करना पड़ता है। जहाँ पर दूसरों के सहयोग और सलाह की आवश्यकता होती है। जहाँ पर है राग, द्वेष, भय और चिन्ता। फिर ऐसे मर्त्यलोक में यदि कायदे हों, कानून हों—तो यह उन्हीं के सुख और सुविधा के लिए ही। और फिर यदि मनुष्य लोक में सभी संयम में बँधे हों, एक व्रत का पालन करते हों, तो यह उनके हक में सन्तोष, सुख और उन्नति का ही मूल स्वरूप है। यह है देव लोक—न है आवश्यकता यहाँ, न है सुविधाजनक व्यवस्था की आवश्यकता, और न ही है एकव्रत के पालन का महत्व। जहाँ पर केवल सुख हो, वहाँ पर कैसा दुःख का रोना और उसका निराकरण !

मैं स्तब्ध था स्वर्ग लोक में ! और राका समझ रही थी मेरी स्तब्धता को। विलास की क्रीणा भूमि में भी विलास कोई न करे—तो आश्चर्य था। अकेला था तो याद करता था, रमणी की जो साथ में होती, उसके साथ मैं कलोलें करता, और उसमें मैं अपने को भुला देता, वह मुझमें अपने को भुला देती। हम दोनों होते एक ही सूत्र में, सूत्र ही क्यों बाहुपाशों में आबद्ध। राका चाहती थी मेरे साथ विलास करना। परन्तु अब मैं काफी समय राका के साथ रह चुका था, इसलिए मेरी आकांक्षा धूमिल हो चली थी। अब मैं सर्वदा दुकेला था—इसलिए मुझे अब याद ही न रहा मैं कभी अकेला भी था, और याद करता था किसी संगिनी की, जिसके साथ मैं जीवन गुजार देता—यह न मालूम होता सूनापन क्या है, विषमता क्या है, दुःख क्या है—क्योंकि दुःख तो चाह से होती है—और चाह ही जब न हो तो दुःख कैसा ! मेरी चाह पूर्ण हो जाती, क्योंकि मुझे मेरी जीवन संगिनी मिल जाती। दो जीव तत्वों का मेल

होता, यही तो मेरी महान आकांक्षा थी। राका के सान्निध्य से वह भी पूर्ण हो चली! मैं पूर्ववत् ही रहा जैसे जंगल में रहा और शान्त भी वैसा ही रहा —जैसा अकेला था—परन्तु मुझे इस समय सुख था—क्योंकि राका मेरी गोद में लेटी थी और मेरी ओर देख रही थी—मानो कोई चुम्बक देख रहा हो लोहे को, जो निश्चय ही कच्चा नहीं था पक्का था। क्या राका उसे भी चुम्बक बना सकती थी—जो राका को अपने में मिला लेता और राका उसमें खो जाती—हाँ हमेशा के लिए नहीं—कुछ समय के लिए ही सही!

७

मेरा कुछ अजीब हाल था। मैं यद्यपि राका को अपने बराबर ही समझता था, फिर भी मुझे सच्चे अर्थों में मालूम था, मेरा भविष्य क्या है। आदि और अन्त की दुनिया मुझे ख्याल थी। मैं जानता था राका बावली है, वह देवलोक की सुन्दरी है—और वह मुझसे अपनी असीम आशा संजोए बैठी है। परन्तु मैं यह भी जानता था, राका मर्त्यलोक में मेरी सहचरी, मेरी पत्नी बनकर नहीं रह सकती। वह मेरी क्रीणास्थली तभी हो सकती थी, जब वह मुझसे एक सूत्र में आबद्ध हो जाती। राका नहीं जानती थी मेरी सूक्ष्म अनुभूतियों और मानव लोक की परम्परा और मेरे संस्कार को भी। क्योंकि मैं कुलीन था, मेरी माँ भी कुलीन थी। फिर कुलीन तो सारा समाज था। इसीलिए मेरे में कुलीन रक्त बह रहा था। रक्त ही मस्तिष्क का कार्य संचालित करता है, फिर मेरा शुद्ध रक्त मुझे कुराह पर कैसे ले जाता। राका नासमझ थी, वह थी न अप्सरा और भोग की रूपान्तर!

मैं देवलोक में भी राका का पति नहीं बन सकता था—क्योंकि राका तो देवलोक में रहने वाली थी—जब तक उसका पुण्य था, उसके साथ! और मैं तभी तक जिन्दा रहता जब तक मेरी छोटी सी जिन्दगी रहती मेरे साथ। राका केवल युवा थी—और तब तक युवा रहेगी—जब तक वह देवलोक में

रहेगी। परन्तु मैं तो प्रौढ़ भी हो चलूँगा—जरा को भी प्राप्त होऊँगा—और मेरी मृत्यु भी होगी अवश्य। फिर कहाँ रहेगी राका! फिर किसे देखेगी वह! मैं जब तक युवा था—राका मेरी ओर सतृष्ण नेत्रों से देख सकती थी—अपनी रह रहकर प्यास भी बुझाती—जब तक मेरे में प्रेम रस और मादकता होती—परन्तु मेरे क्षीण होते ही—मानों पृथ्वी का मौसम बदल जाता—वसन्त का अन्त होता, गर्म और शीत के थपेड़ों में युगुल पशु पक्षी तक घोसले में घुस जाते—और तब तक न निकलते, जब तक मौसम फिर अनुकूल न हो जाता।

अस्तु, राका फिर भी लोट-पोट हो रही थी मेरे सामने। मैं खोया था अतीत में। राका मेरी इस भावुकता को देख कर और भी बेसुध हो उठी। वह भूल गई मैं मानव हूँ, वह देव है—मैं नश्वर हूँ—वह चैतन्य है। मैं मर्त्यलोक का प्राणी हूँ वह देवलोक की। इससे क्या? जब तक देव रहेगा या मानव—वह सुखी रहेगा—सुख ही तो जीवन है। चाहे वह क्षणिक हो या नित नवीन। फिर राका कितने काल से असीम सुख से वंचित थी। मानो उसकी अब आकांक्षा का बाँध टूट रहा था। आज जब कि मौसम रोज की भांति ही अनोखा और अद्वितीय था—राका ने सोमरस न पिया, न पिया!

मुझे भय हो रहा था राका सोमरस क्यों नहीं पीती। आज राका का मनोभाव कुछ अजीब था। मैंने प्याला उठाया सोमरस का। उसके अधरों से भी लगा दिया, उसके साथ कलोलें भी किया मैंने, परन्तु वह केवल मुस्कुरा भर दी। परन्तु फिर हो उठी गम्भीर मानों रूठ रही थी मुझसे। मेरी ओर कभी-कभी तिरछे नयन से देख भी रही थी। राका सत्याग्रह पर

उतर आई थी। उसने कहा जब तक तुम न पीओगे सोमरस—तब तक मैं भी न पीऊँगी—और उस समय तक न पीऊँगी जब तक मेरा देवलोक में वास है। मेरी हाय! राका से छिपी न रही। परन्तु फिर भी वह अनमनी सी बैठी रही—खड़ी हो गई—टहलने भी लगी—पेड़ पर भी चढ़ने लगी—और डाल पर बैठ कर मानों झूला झूल रही थी—नीचे ऊपर, ऊपर नीचे।

राका! राका! नीचे उतरो। तुम्हें सोमरस पीना ही पड़ेगा। मैं गम्भीरता को समझ रहा था। राका सोमरस न पिये तो यह राका का अपूर्व त्याग होता। त्याग में करुणा का उद्वेग होता। राका का दिल मचल पड़ता, उसकी बेबसी में। मैं भी बेबस था अपने नश्वरता का। मैं चाहता था मैं खो जाऊँ सोमरस में और भूल जाऊँ अपने आप को। चाहे फिर राका मुझे ठुकरा कर फेक क्यों न दे! एक बार तो मैं भूल ही जाना चाहता था। मैं चिल्ला उठा, राका आओ आओ, मैं तैयार हूँ! राका का क्या पूछना था—वह तितली बन बैठी! उसकी धमनियों में तीव्र रक्त प्रवाह हो उठा! उसकी कुम्हलायी हुई प्रत्येक पंखुड़ियाँ खिल उठीं। राका आकर मुझसे लिपट गई। और मैं भी भूल गया—अपनी असहायता को! परन्तु राका बेसुध से सुध में हुई—तो उसने मुझसे कहा लो पहले तुम पीओ—मदिरा! और अब मुझे फिर ख्याल हो आया मेरा जंगल—जब कि हिरनों की दौड़ होती—मछलियों की उछल होती—और पक्षियों का कलरव और फड़फड़ाहट होती। मुझे ख्याल हो आया उस व्याध का! जिसने हिरनों की दौड़ को बन्द कर दिया, जिसने मछलियों की उछल को निर्जीव कर दिया—और जिसने पँक्षियों की तड़फड़ाहट को जमीन पर बिखेर दिया! और जब राका का सोमरस मेरे अधर तक पहुँच ही रहा था—मेरे अधरों में स्पर्श भी होने

वाला था—मैं शायद जीवन के उस अमृत को चख भी लेता—देखता कैसा होता है—सोमरस—एक बूँद ही सही ! राका की उत्सुकता भी उसकी साँस को रूँध रही थी—और जब कि उसके हृदय की धड़कन आसमान पर पहुँच रही थी—अजीब था !—देवलोक की तमाम नारियाँ हमारे बेसुध सुख को देख रही थीं—हम अपने में इतने खोए हुए थे कि, याद ही न रहा—सर्वत्र करुणा का प्रसार हो रहा है—सर्वत्र रोमांच का प्रादुर्भाव हो रहा है और सभी के धड़कते हृदय किसी अपूर्व कल्पना की प्रतीक्षा कर रहे हैं। यह राग भी कितना महान् था—जिसमें शोख अदा थी ! वह सुख कामना भी कितनी गूढ़ थी—जिसको पाने के लिए असीम तड़पन थी ! फिर उन जीवों की कितनी करुण गाथा थी जो एक दूसरे के सुख में विभोर न हो सके ! देव लोक की वाराङ्गनाएँ ! और देव लोक के विहारी देव—सभी चर्चा कर रहे थे—मेरी और राका की। वह देख रहे थे—सोमरस रहित राका की मादकता को—और जब कि मुझे उस सुरम्य हरे जंगल और मुस्कुराते फूलों की झूमाहट याद आ रही थी, जो कल ही सूख जाने वाले थे—राका का प्याला एक बार फिर से ऊँचा उठ रहा था—मानो मैं उसे अब पी ही जाना चाहता था—राका की विलासमय अपूर्व प्रतिमा जो जरा टेढ़ी थी, उठी हुई थी—जो जमीन पर थी—हरी दूबपर—जो मखमल से भी कहीं मुलायम और गुदगुदी थी। मैंने उसके हाथ को फिर से हटा दिया। और मैं रो उठा ! मेरी असीम कामना अधूरी हो रही थी।

राका की विह्वलता छिपी न थी। देवलोक के समस्त दर्शक भी करुणा में रो उठे। यह देवलोक का अनोखा इतिहास था—दुःख ही सब ओर सुख का प्रादुर्भाव कर रहा था—करुणा का एक अजीब सुख मिश्रित नवीन अनुभव

था। इस करुणा के उद्वेग ने—जो नवीन था उनके समस्त जीवन में—वह विभोर हो उठे। रोमांचित भी! राका भी रो उठी! समस्त देवलोक रो उठा और राका पूर्ण रूप से अन्धी थी। तभी तो आज समस्त देवलोक अन्धा हो रहा था। राका की तन्द्रा टूटी तो उसने देखा समस्त देवलोक-वासियों को अपने समक्ष, जिनके नेत्रों में उतनी ही करुणा थी जितनी मेरे में—और राका की तन्द्रा टूटने पर वह सकुचा उठी! उसने मीठी मुस्कान से सभी को बिदा कर दिया। मैं भी राका के साथ उठ खड़ा हुआ। तैयारी कर रहा था—क्या होने वाला है—राका ने सोमरस पी लिया—और विभोर हो उठी अपनी अनोखी तन्द्रा में। जो सजग थी—जिसमें उसे नित नवीन अनुभूति होती थी—मेरा स्पर्श सुख ही उसे सातों सितारों का सुख ला मिलाता था!

देवियाँ कह रही थीं—देखो तो यह युवक कितना शोख है—कितना सुगढ़ और कोमल है। फिर भी इसमें यह अनोखा वैराग्य है। उदासीन भी है कितना! क्या है इसका जीवन! कितना महान्, कितना निष्कलुष! मैं तो चाहती हूँ इसे अपने गले का हार बना लूँ! ओह! राका अपनी जीवन घड़ियों को किस प्रकार व्यतीत कर रही है—क्या भोगा है उसने भोग! और दुःखी ही तो है—स्वर्ग में भी दुःख! क्या है उसका कर्म फल! मेरा तो अब देवों से जी भर चला। मैं तो पीना चाहती हूँ—इस युवक को! और जी भर पीकर भी तृप्त न होऊँ। परन्तु यह युवक क्या है—वज्र कठोर! इसका हृदय क्या है—अथाह गहराई! और इसका चेहरा क्या है—गुलाब और कमल की मुस्कान भी फीकी नजर आती है।

देवियों ने देवों को छोड़ दिया। स्वर्ग में तहलका मच रहा था। देव अकेले हो रहे थे! मैं विहार कर रहा था—राका के साथ—और देवियाँ बैठी

थीं सर्वत्र अनमनी हो। राका इस समय प्रसन्न थी—देवियों के आचरणों से ! क्योंकि राका हारी हुई थी—वह चाहती थी—मैं किसी प्रकार विजित अवश्य हो जाऊँ। परन्तु आज से एक साल पूर्व कोई राका की संगिनी मुझसे बोलती भी—तो राका उसकी जबान नोच लेती। कोई मुझसे शोख अदा भी करती—तो राका उससे झगड़ पड़ती। और आज तो सभी सुन्दरियां अपने को मुझ पर निछावर कर चुकी थीं—फिर भी मैं राका के साथ रहा—और जब कि उन बालाओं ने मेरे सामने सामुहिक क्रीणा का आयोजन किया तो मानों मैं इन्द्र बन बैठा ! समस्त इन्द्रपुरी जगमगा उठी—क्योंकि समस्त इन्द्रपुरी के इतिहास में आज जैसा विह्वल नृत्य कभी न हुआ था। और जबकि इन्द्र के दरबार में भी बनावटी और कलापूर्ण नृत्य होता था—इस भावुक नृत्य का झंकार साक्षात् इन्द्र और उसकी प्रेयसी को भी अपने रंग-महलों से खींच लाई ! यहाँ सुध-बुध-हीन समा और राका फिर भी मेरे बगल में थी—मुझे निहार रही थी —अपलक नेत्रों से—जैसा वह कितनी ही बार कर चुकी थी—और मैं भी देख रहा था नृत्य को—मानो मेरा एक ही राग था—जीवन की घड़ियों को गुजारना ! मैं राका की अतृप्त प्यास को न बुझा सका। उसे केवल स्पर्श सुख दे सका। उसके साथ मैंने विहार भी किया ! परन्तु मुझे जो चाह थी वह मुझे मिल गयी। राका जैसी सुन्दरी की चाह उसे न मिली—मैंने क्यों न पूर्ण किया उसकी चाह—वह इसलिये कि मैं जानता था अपनी नश्वरता को और यह भी जानता था—राका की आकांक्षा केवल एक अनोखा सपना मात्र है !

८

राका अब कुछ उदास हो रही थी—मैं उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न करता तो वह घबरा उठती। अब राका में वह पूर्व उत्साह न रहा—क्योंकि उसकी आकांक्षा निराश और धूमिल हो रही थी। वह मुझसे भोग चाहती थी—मैं चाहता था जीवन! परन्तु जीवन तो मर्त्यलोक में ही मिल सकता था—स्वर्ग में कहाँ! यही अन्तर था मेरे में और राका में। राका ने मुझे क्यों चुना और मैंने राका के साथ क्यों प्रेम किया—इसका कारण यही था—राका मुझे गलत समझ बैठी थी—और मैंने राका से साथ किया था अपनी आकांक्षा पूर्ण करने के लिए—वह आकांक्षा केवल इतनी थी कि मुझे रमणी का संग चाहिए था। मैं विहार करना चाहता था—मैं चाहता था अकेला न रहूँ—जीवन से जीवन का मेल ही मैं चाहता था। और इसीलिये मैं राका के साथ विचरण कर रहा था। मैं भोग भी चाहता था—परन्तु उसमें छिपा विष मुझे दहलाए डालता था। मेरा औजस तभी तक मुझमें था—जब तक मैं युवा होता! और युवा को नष्ट करने वाले तत्व का ही यदि मैं आह्वान करता, तो फिर न रहती मेरे पास राका, न रहता स्वर्ग और फिर मैं पददलित होकर जंगल में पड़ा रहता—अशांत, तड़पता

और नैतिकता से च्युत होकर! फिर न होती करुणा, न होता राका का विहार– न होती स्वर्ग में अनोखी घटना। परन्तु मैं भी पुरुष था—मेरी भी वासनाएँ थीं। मैं भी अजित नहीं था। काम के बाणों से मैं अछूता नहीं रह सकता था। राका यदि कामदेव को बुला लाती तो मैं चीख उठता—क्योंकि उस पीड़ा की कोई दवा नहीं। राका की महानता थी—उसने ऐसा घृणित बलात्कार कभी न करना चाहा। परन्तु अब वह उदास थी। वह ठुकराई हुई व अपमानित भी नजर आ रही थी। राका की तमाम सहेलियाँ षणयन्त्र रच रही थीं!

मेरे दुर्भाग्य से मेरा सौभाग्य प्रबल अवश्य था। तभी तो मुझे राका जैसी संगिनी मिली। फिर देवलोक की क्षीणा मिली—जहाँ न भूख हो, न हो शक्तिह्रास, न जहाँ शीत हो, न ताप की ज्वाला–और जहाँ न रोग हो न पीड़ा। फिर राका की सहेलियों की कुटिलता भरी आँखें मुझसे छिपी न रहीं। उनका हाव-भाव भी सन्देहास्पद ही रहा। मानों ठग देख रहा था अपने शिकार को—न थी वहाँ कोमलता—न थी भावना, न था वहाँ रोमांस का सच्चा रूप—जो पुरुष और स्त्री के सान्निध्य से ही प्राप्त हो सकता था। न थी वहाँ शुद्ध आकांक्षा। और मैं अपने भय, अपनी विह्वलता और परवशता से व्याकुल हो रहा था—मानों कोई जादूगरनी मुझपर जादू करना चाहती थी—मुझे भेड़ बना लेती—और मैं उसके पीछे-पीछे घूमता। परन्तु राका ऐसी नहीं थी। उसने मुझे सभी विपत्तियों से बचाया। वह अभागिनी हो सकती थी, परन्तु मेरी इच्छा के विपरीत कुछ भी नहीं कर सकती थी। देवगण भी अकेले होकर अपने जीवन को निरस समझ रहे थे और जब कि मैं चाहता सभी देवांगनाएँ खिलखिलाएँ, उनमें विनोद हो और वह देवताओं के साथ विहार

करे—सभी मानों भ्रमरों की भांति मेरे ऊपर गुञ्जार कर रही थीं, परन्तु मधु न मिलने से उनकी अकुलाहट भी बढ़ रही थी।

देवताओं ने इन्द्र के दरबार में अपनी करुण गाथा पहुँचा ही दी—क्या लाभ है देवलोक का—जब वह सभी अकेले ही रहें ? और इन्द्र ने बुला भेजा मुझे—मेरे साथ राका भी थी—मैं नहीं जानता था मेरा क्या होगा ? मैं यदि कुछ चाहता था तो केवल चरित्र रक्षा और डरता था तो बलात्कार से—जो कामदेव के वाण मुझ पर कर सकते थे। मुझमें इतनी शक्ति नहीं थी; मैं उस शक्तिशाली वाणों को भी वहन कर पाता। रास्ते में मैंने राका से कहा भी, राका ! मुझे न मालूम क्यों भय मालूम पड़ रहा है। बोलो मेरा क्या दोष है ? मुझे तुमपर पूर्ण विश्वास है। मैं तुमसे सच्चे हृदय से प्रेम भी करता हूँ। मैं ऐसा अनुभव करता हूँ—मैं तुम्हारे बिना रह नहीं सकता। परन्तु राका ! बोलो, मेरे भय का क्या कारण है ! मुझे रोमांच होता है, सिहरन भी ! इन्द्र का दरबार और मैं छोटा सा व्यक्ति हूँ ! फिर राका मुझे यह विश्वास दो, तुम मुझे विपत्तियों में बचाओगी। मैं जो नहीं चाहूँगा उसे तुम कभी न होने दोगी ! राका ! मैं जानता हूँ तुम्हारी पीड़ा को ! परन्तु क्योंकि तुम मेरी मित्र हो, और हम दोनों को ही एक दूसरे से अटूट सुख की प्राप्ति होती रही है—बोलो न राका ! क्या कभी तुमने साथ रह कर उदासी का अनुभव किया है ? क्या तुम बता सकती हो—तुमने इतना समय मेरे साथ किस तरह व्यतीत कर दिया और तुम्हें उसका पता भी न चला !

रास्ते का दृश्य अपूर्व था ! हमारा विमान इठलाता और हवा के झकोरों को चीरता हुआ चला जा रहा था। परन्तु राका भी अजीब थी, मैं भी अजूबा था—सर्वत्र दर्शक ही दर्शक भरे पड़े थे। देख रहे थे मेरी अनोखी अदा को,

मेरे विवेक को, मेरी तपश्चर्या को भी ! राका का अभाग्य भी उनसे छिपा न था। और यही तो कारण था जब कि राका उदास नजर आ रही थी—मेरी बातों ने उसे शान्ति का तनिक आभास दिया। वह मेरे ऊपर दया कर मचल उठी। उसकी आखें सजल हो उठीं ! उसने मेरे हाथों को जोरों से मसल डाला और दर्शकों का उपहास कर भी मेरी आँखों में अपनी आँखें डाल दी ! विमानों से भरा हुआ आकाश अजीब समा प्रस्तुत कर रहा था। और मुझे राका के साथ का अजीब रोमांच हो रहा था। राका के साथ रहने की प्यास मेरी कभी न बुझ सकी थी। मुझे राका के साथ रहने में ही सभी कुछ मिल जाता था। इस समय का संकट मुझे समस्त सम्मानों को भी भुला रहा था—मैं भूल रहा था—इस समय मेरा जो प्रदर्शन हो रहा था—वह साक्षात इन्द्र, वरुण, कुबेरों को भी न प्राप्त हो सकता था—क्योंकि सुख ही तो देवलोक का विधान है—फिर राका यदि मेरे साथ असीम प्यास के साथ सुख भोगती तो वह अनोखा था। क्योंकि करुणा में और विह्वलता में भावनाओं से भरा हुआ जो सुख मिलता है—वह सभी पार्थिव सुखों को भी परास्त कर देता है। मेरे बाणों से कोई भी न बचा। सर्वत्र आकांक्षा थी। और आकांक्षा ने सर्वत्र सुख का अभेद जाला सा बिछा रखा था। मैं क्या था आकांक्षा का रूपान्तर था—कितना संयमी, अडिग और अविचल ! राका जैसी प्रेयसी भी मुझे न अपने रास्ते पर ला सकी।

तोरण द्वार पर इन्द्र सपत्नीक मेरा और राका का इन्तजार कर रहे थे। उनके पास भी आकांक्षा की गंध पहुँच चुकी थी। इन्द्र तो देवों के देव ! उन्हें क्या कमी और किसकी ? और यही कारण था कि जो सुख आकांक्षा का था—वह उन्हें नसीब ही नहीं था। इन्द्र चाहता था—उसके साम्राज्य में

सभी की समस्त आकांक्षाओं की पूर्ति हो जाय । इन्द्र के राज्य का विधान था—आकांक्षा दुःख का प्रदाता और असुख का बीज है । इसलिए अपने पुण्यों का संचय कर जो स्वर्ग लोक में आते हैं—उन्हें सुख ही सुख मिलना चाहिए । इसके अतिरिक्त इन्द्र सजग था इसलिए भी, क्योंकि उसे अन्य देवलोकों से भी अपने को श्रेष्ट सिद्ध करना था । यही कारण था—इन्द्र के राज्य में आकांक्षा शेष ही न रही थी—और सभी भोगमय थे—नहीं जानते थे—दिन किधर जा रहे हैं । रमणियों का संग, मदिरा की छूट और पवनों का विहार—रंगीनी की बहार साथ ही मन्द सुगन्ध का प्रसार—फिर सर्वत्र कलोलें थी, पुष्पों की झूमा-हट थी, हरियाली और मखमली बिछौने थे—क्या थी आकांक्षा ! कहीं नहीं ! सुख ही सुख था—दुःख का लेश नहीं ! और न थी यहाँ प्रतियोगिता—न थी ईर्षा—यहाँ सभी रूप गुण में समान थे—और सभी विभोर थे—अपने अपने विहार में ।

राका अजीब थी—उसकी इच्छा क्यों न पूर्ण हो सकी ! फिर राका के समान ही अन्य समस्त रमणियाँ भी अजीब थीं—क्योंकि राका के समान ही उनकी इच्छा हो चली थी । और जब कि सर्वत्र इच्छा का साम्राज्य हो रहा था—इच्छा की अपूर्ति ही दुःख का बीजारोपण कर रहा था । देव रमणियाँ जब अशान्त लोलुप और सुख की चाह रख रही थीं—तो देवताओं के सुख क्षण पर भी वज्रपात हो रहा था । देवियाँ अपने ध्यान को कहीं अन्य ही रखती नजर आतीं । न थी वहाँ द्ववैध विह्वलता—न था वहाँ दो जीवों का चैतन्यमय मिलन ! न था वहाँ एक दूसरे का असीम सुख ! फिर जब रमणियाँ दुःखी हो चलीं ! देव भी हताश हो चले—उनका जीवन भी असार नजर आया ! और मानो समस्त इन्द्रलोक में भी दुःख, आकांक्षा और करुणा का उद्वेग हो रहा था । इन्द्र

भला इसे कैसे सहन कर सकता था। उसके विधान का उल्लंघन हो रहा था। आकांक्षा अपनी जड़ जमा रही थी—फैलती आग को तीव्र हवा के झंकोरों की सहायता मिल रही थी। इन्द्र के दरबार में भी सर्वत्र आकांक्षा विराजमान हो गई। स्वयं इन्द्र की प्रेयसी भी आकांक्षित हो उठीं! इन्द्र भी इस आग से अछूता न रहा।

फिर भी इन्द्र को देवलोक पर शासन करना था। इन्द्र भोग तो स्वयं चाहता ही था और उसकी प्रेयसी का सुख सान्निध्य भी उसकी आकांक्षा थी—जो पहले कभी न थी—क्योंकि पहले तो उसकी प्रेयसी स्वयं ही उसके गले की हार थी। इन्द्र ने धीरज से काम लिया। राका ही इस समस्त विपत्तियों और हलचलों का मूल कारण थी। परन्तु मैं तो बीजों का बीज था—क्योंकि यदि मेरी जगह कोई दूसरा होता तो वह राका पर अपने को भस्म कर वापस मर्त्यलोक की यात्रा करता। राका तभी तक किसी को अपने साथ रख सकती थी, जब तक उसे सुख और तृप्ति होती रहती।

परन्तु मनुष्य की शक्ति और कान्ति तो उसका संयम है। मनुष्य की प्रतिभा और उसका आकर्षण भी उसका संयम ही है। फिर जो संसार का सर्वश्रेष्ठ संयमी है—उसकी आभा समस्त देवलोक ही क्या ब्रह्मांड तक छा जाती है। मुझमें भी आकांक्षा तो थी, परन्तु अभी तक मुझमें संयम का अभाव न था—यही कारण था अभी तक मैं स्वर्ग लोक का विहार कर सकता था। संयम से च्युत होते ही—न मिलती मुझे राका, न मिलता देवलोक और मैं फिर से नजर आता अपने जंगल में—और तड़पता अशांत होकर! राका की याद करता—न रहती पहले की शान्ति, न रहता पहले का सन्तोष और न होती पहले

की मादकता ! जब मुझे वैराग्य होता ! जब मुझे अपने अन्दर ही समस्त सुखों का लेश होता ! मानो नित चैतन्य से ही मैं केलि क्रीणा करता !

मैं अपने को अभाग्यवान नहीं बनाना चाहता था। मैंने राका से कहा भी। राका देखो, तुम्हें मेरे कारण परेशान नहीं होना चाहिए। यदि तुम मेरे साथ रहना चाहती हो तो सहर्ष रहो। मैं इसे अपना अहोभाग्य समझूँगा, क्योंकि तुम्हारे साथ रहने मात्र से मेरी आकांक्षा की तृप्ति होती रहती है। मैं सब कुछ पा जाता हूँ—मैं केवल जीवन को गुजारना चाहता हूँ। फिर भी मुझे प्यास की जब तड़पन होती है, तो उसे भी मैं सुख समझ बैठता हूँ—क्योंकि तुम मेरे पास जो रहती हो और मुझसे प्रेम करती हो, मेरे कारण क्योंकि तुम्हें भी आनन्द की प्राप्ति होती है—तुम मुझमें खो जाना चाहती हो, मैं तुममें ! परन्तु राका के असन्तोष में तो मानों घृत की आहुति पड़ी ! उसका प्रेम मानों प्रज्ज्वलित अग्नि हो उठा ! उसने चाहा मुझे अपनी आँखों में छिपा ले, अपने आंचल में बाँध ले, मुझे पददलित कर डाले ! और वह करुणा से पागल हो उठी क्योंकि उसे मेरे पर तरस आ रहा था मेरे अभाग्य पर ! साथ ही उसकी आकांक्षा का विशाल धरोहर भी गिरता नजर आया—उसकी आकांक्षा और भी बलवती हो उठी।

इन्द्र के सामने भी नई नई समस्याओं की पैदाईश हो रही थी। वह देख रहा था—अब समस्त घटनाएँ काबू के बाहर हो चुकी हैं। यह पहला अवसर था, जब इन्द्र चिन्तित नजर आ रहा था। फिर इन्द्र ही क्यों, समस्त इन्द्रलोक चिन्तित नजर आ रहा था। अजीब थी हालत ! मानों सृष्टि का विधान ही चौपट हो रहा था ! देवलोक का भूकम्प समस्त अन्यलोक में भी आश्चर्यकारी समाचार की सृष्टि कर रहा था। एक प्रकार से समस्त ब्रह्मांड ही

अकुलाहट का अनुभव कर रहा था। क्षीर सागर पर शयन करते हुए रमापति भी अपनी करवटें बदलने लगे थे—और ब्रह्मा का आसन भी डोल रहा था। मानों शिव पार्वती के साथ क्रीणा कर रहे थे—और पार्वती भी रुठ रही थीं! सुख भोगने वाले, सुख में ही पले, सुख के ही आकांक्षी—देवलोक के देवों की अकुलाहट अपनी चरम सीमा पर पहुँच रही थी! उधर इन्द्र ने अपने मन्त्रियों की सभा की तो वहाँ के विवाद ने एक नए झांझावात को जन्म दे डाला!

६

समस्त ब्रह्मांड को अशान्त करने वाला देवलोक सिद्ध हो रहा था, क्योंकि देवलोक की अशान्ति सर्वत्र उत्सुकता का प्रादुर्भाव कर रही थी—और सभी सोच रहे थे—क्या होने वाला है ? नाग कन्या भी सोच रही थी—कैसा होगा युवक ! उसके साथ विहार भी कैसा अनोखा होगा ! फिर नाग-लोक भी विशाक्त हो रहा था। इन्द्र की परेशानियाँ तब और भी बढ़ गयीं, जब इन्द्र पर यह दोषारोपण किया जाने लगा—वही इन सभी हलचलों और विपत्तियों, उच्छृंखलता और असुख का मूल बीज है। वह मदान्ध और अकर्तव्य-परायण है—जो अपने राज्य में सुख और शान्ति, सन्तोष नहीं बनाए रख सकता ! इन्द्र तो पागल हो रहा था—क्रोध में—इन्द्रपुरी में अनोखी घटना थी—इन्द्र का क्रोध ! सर्वत्र आकांक्षा और फिर असन्तोष का प्रादुर्भाव !

मन्त्रियों की सभा में राका भी विराजमान थी। गुप्त सभा थी और सभी विचार कर रहे थे, क्या होना चाहिए ! अग्नि इतनी फैल चुकी थी—अब उसे बुझाया नहीं जा सकता था। मुझे वापस मर्त्यलोक में भी नहीं भेजा जा सकता था, क्योंकि समस्त देवलोक की रमणियाँ ऐसा होने देना पसन्द न करतीं। फिर राका भी इसका विरोध कर रही थी। राका की सम्मति और उसकी स्वीकृति ही समस्त पहलुओं पर सबसे महत्वपूर्ण थी—क्योंकि स्वर्ग में किसी को

भी असन्तोष की प्राप्ति नहीं कराई जा सकती थी—फिर राका भी एक नागरिक थी—और महत्वपूर्ण थी अपने वातावरण में। अस्तु अब प्रश्न उठा, मुझे क्यों न कामदेव के वाणों से घायल कर दिया जाए। चोट लगेगी सही! परन्तु, मैं रास्ते पर आ जाऊँगा—तो राका विह्वल हो उठी। उसे याद हो आया मेरा करुणापूर्ण चेहरा! साकार हो उठी मेरी रसपूर्ण वाणी उसके सामने! मेरा महान् भय भी उसे याद हो आया! राका ने मानो समस्त सभा को भङ्ग कर दिया। विक्षिप्त हो वह उठ खड़ी हुई और भाग आई मेरे पास। लिपट भी गई वह मुझसे। वह कहने लगी, वह कह रहे थे—तुम्हें काम के वाणों से घायल कर दो। और मैं जब कि सन्न हो रहा था—राका कह रही थी, मैं ऐसा कभी न होने दूंगी, चाहे मैं जीवन पर्यन्त दुःखी और तड़पती रहूँ—तुम्हें मैं दुःखी कभी न करूँगी। राका कह आई थी सभा में—इन्द्र से भी उसने चुनौती दे डाली थी—वह ऐसा कभी न होने देगी—यह कायरता है, मेरा मान भंग है और समस्त इन्द्रपुरी का उपहास है।

राका जब शान्त हुई, इन्द्र भी जब सन्तुलन को प्राप्त हो चुके, मन्त्रियों ने भी जब अपने को सोचने का मौका दिया, तो यही तय हो पाया—मुझे इन्द्रपुरी में विचरण करने देने का पूरा अवसर दिया जाए। मुझे लुभाने के लिए देवलोक के समस्त प्रसाधनों का उपभोग हो। इन्द्र ने अपना खजाना खोल दिया। चकाचौंध ने इन्द्रलोक को जगमगा दिया। सर्वत्र की सजावट और भोग प्रसाधनों और चित्रकारियों ने साक्षात विलास का रूप धारण किया। राका की सजधज भी अनोखी थी। जब कि वह राजपथ पर मेरे साथ भ्रमण करती तो मैं साक्षात् इन्द्र लगता—और इन्द्र की आखें मेरे सौभाग्य को देख अन्धकार ढूँढ़ने लगतीं। राजधानी की अनोखी सजावट क्या थी—मानो किसी महापुरुष

के स्वागत का आयोजन किया गया हो। मुझे आनन्द आ रहा था राका के साथ—फिर भी मुझे याद था मेरा चैतन्य ! राका की सुगंधि मुझे मदहोश किए जा रही थी। आज जैसी सुन्दरी राका को मैंने कहीं न देखा। और जब कि समस्त रमणियों की आकांक्षा अन्दर ही अन्दर सुलग रही थी—सभी राका के भाग्य पर ईर्षा कर रही थीं। मेरा हाव भाव भी अनोखा हो रहा था। मुझे मानो साक्षात इन्द्रपुरी ग्रस रही थी। मैं भूल रहा था—मैं कहाँ हूँ—किस अवस्था में हूँ—और मैं राका को फिर भी अपने साथ होने से अपूर्व सन्तोष की सांस ले रहा था। मैं भूल रहा था—मेरे पीछे कितनी ही कुटिल आँखें चमक रही हैं—राका भी चाहती थी मैं मोहित हो जाऊँ—राका की अतृप्त प्यास को हमेशा के लिए बुझा दूं !

मुझे विशेष सम्मान के साथ इन्द्र ने अपने महल में ही ठहराया। जब तक मैं परास्त न हो जाता, मुझे अतिथि के रूप में ही रहने का आयोजन किया गया था। जब कि राका हर दम मेरे ही साथ रहती—इन्द्र का दरबार इस समय अपने सम्पूर्ण इतिहास में अनोखे रूप में भरा था और समस्त समाज अपने को भूल जाना चाहता था—रंगरलियों में, मादक नृत्यों में, वीणा और पायलों की झंकार में—संगीत और नृत्य मानों आत्मा को ईश्वरत्व प्रदान कर रहे थे। संगीत ही अहं की प्रतिमा को धारण कर रही थी। फिर क्या था, समस्त देवलोक भूल गया संगीत की धुन में ! मैं भी मोहित हो चला। राका भी तो मोहित थी—परन्तु इन्द्र की चाह पूरी न हुई ! क्योंकि संगीत तो उस चाह में रोड़े अटका रहा था। फिर भी आयोजन चालू रहा। संगीत के स्थान पर नृत्य ही विशेष स्थान ग्रहण कर रहा था—नर्तकी के रूप और उर्वशी की प्रतिमा ने राका को भी विवश किया अपने

हृदय को सँभालने के लिये। इन्द्र अपने को उर्वशी पर खो बैठा! ऐसी सुन्दरी उर्वशी कभी न दिखाई दी थी, ऐसी अदा उसकी कभी न थी—जैसी आज थी—और ऐसा मन्त्र भी कभी न था—जैसा इस समय सर्वत्र उर्वशी फेक रही थी। कुछ क्षण के लिए ऐसा मालूम पड़ा—न है स्वर्ग की कोई समस्या, न है उसकी महान् विपत्ति, न है राका और न ही हूँ मैं।

अभी तन्द्रा चालू ही थी कि, उर्वशी अपने अपूर्व राग के साथ मुझ पर अनुरक्त हो उठी। राका का उपहास कर भी वह मेरे सामने अपनी अदा का प्रदर्शन कर रही थी। उर्वशी की मादकता मुझमें भय का संचार कर रही थी। मानों साक्षात कोई अलौकिक शक्ति मेरी रक्षा कर रही थी—मैंने राका को तेजी से पकड़ रखा था और राका भी छटपटा रही थी—क्योंकि उसकी कलाई में जोरों से दर्द होने लगा था। मेरी मुट्ठी कसती ही जा रही थी—अन्त में उसने मेरी मुट्ठी छुड़ा ही तो डाला। फिर भी मैं नहीं चाहता था—उर्वशी मुझे राका से विलग कर देती! राका, क्योंकि वास्तव में मुझसे प्रेम करती थी—उर्वशी चाहती थी, केवल उन्माद और इसी निमित्त उसने अपनी सातो कला का प्रदर्शन कर डाला। इन्द्र की राजधानी में अब अपूर्व कोलाहल हो रहा था। समस्त इन्द्रपुरी यद्यपि अब कुछ शान्त हो रही थी—रमणियाँ भी हताश हो देवताओं के साथ विहार कर रही थीं, फिर भी हम दोनों इन्द्र के मेहमान ही बने रहे। इन्द्र भी अब अपना शासन सूत्र सँभाल रहे थे—और सर्वत्र मानों तेज आँधी के झोंके के बाद शान्ति का आह्वान हो रहा था। सभी देव और देवियाँ जब कि एक दूसरे में ही अपने को भुलाने की कोशिश कर रहे थे—मैं राका के साथ—दूबों से रंगी हुई—हरी-हरी आकांक्षा पर लेट रहा

था। जब कि सर्वत्र हरियाली थी—पक्षियों का कलरव था—मन्द समीर की मीठी सुगन्ध थी—वहाँ और कोई भी न था—मैं था और राका थी। राका कह रही थी, यदि तुम न रहोगे तो मेरा मन हो न लगेगा। मैं भी भूल चुका था अपनी पृथ्वी को, अपने एकान्त जंगल को और कलकल करते हुए झरनें को। राका मेरा जीवन भी तुम्हारे बिना शून्य ही रहेगा—क्योंकि अब मैं अकेला रह हो नहीं सकता। मुझे ऐसा मालूम पड़ता है—तुम क्या हो, साक्षात् मेरी आकांक्षा की रुपान्तर, क्योंकि तुम्हारे में मैं असीम प्यास की अनुभूति पाता हूँ! मैं भी ऐसी ही प्यास से तडप रहा हूँ।

राका कहती भी क्या! इस समय वह शान्त थी। भावावेश में तो कभी-कभी आती है। सोमरस आज भी वह पी रही थी, और सोमरस पीने के बाद उसमें मादकता की वृद्धि होना स्वाभाविक था। सोमरस बिना राका को कुछ अच्छा नहीं लगता था। सोमरस पी लेने के बाद उसका मानस ही उसके साथ अठखेलियाँ करने लगता था। फिर भी वह शान्त ही रहती थी। जब कि उसका रक्त-प्रवाह बढ़ता नजर आता, उसके गालों पर लाली भी चमक पड़ती—उसके हृदय का हाहाकार चला जाता था, उसकी उदासी भी काफूर हो जाती थी—वह मेरे साथ में ही सुख का अनुभव कर लेती थी। वह मुझसे कहती—देखो यह देवलोक कितना न्यारा है। यहाँ पर किसी भी प्रकार का दुःख-दर्द नहीं! यहाँ पर केवल क्रीणा है और फिर तुम्हारा जैसा साथ भी है। तुम्हें आश्चर्य होगा—हम यहाँ कैसे अपना जीवन गुजार देते हैं, क्योंकि हमारे लिए संगीत, नृत्य और पुरुषों का संग ही अपूर्व मनबहलाव होता है। हम इसी में भूल जाते हैं—हम कहाँ हैं या हमें क्या करना है! फिर जब से मैंने तुम्हें देखा, मेरी यही कामना है—तुम्हारे

साथ ही रहूँ, क्योंकि मैं तुम पर अनुरक्त हूँ और मानो तुम मदिरा हो और मैं तुम्हें पी जाना चाहती हूँ! फिर भी मुझे प्रसन्नता इसमें होती है कि तुम प्रसन्न हो, मेरे साथ बातें करने में, मुझसे हँसने और कलोलें करने में। मालूम होता है, तुम अभी भी नवीन हो, अभी ही मेरे पास आए हो और अभी ही मैं तुममें खो जाना चाहती हूँ। वास्तव में तुम कितने भाग्यशाली हो—जो मुझे हमेशा अपने से लिपटाए रखते हो—किसी देवता को भी ऐसा सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ!

अब मैं सोच रहा था अपने भविष्य के बारे में। मुझे ख्याल हो रहा था, मुझे क्या करना चाहिए। मैं कुछ आश्वास्त जरूर हुआ था कि, मैं संयम रख सकता हूँ और प्रलोभनों में अपने को डुबा नहीं देता—यही कारण था इन्द्र से मुझे घुल मिल जाने में देर न लगी। इन्द्र का साथ भी मेरे लिए सुखकर था। यदा कदा इन्द्र अपनी प्रेयसी के साथ हमारे पास आकर बैठ ही जाते। आज भी वह दिखाई पड़ रहे थे। विहार कर रहे थे अपनी प्रियतमा के साथ। और हाँ, इधर भी आ रहे थे—हमारी तरफ ही—मैंने अपने वक्ष-स्थल पर से राका का सिर उठा कर दिखाया देखो इन्द्र! वह आ रहे हैं! और राका अपने बालों को संजो रही थी—कि वह आ ही बैठे! मैं यह सोच भी न सका मेरा भविष्य क्या है, मुझे क्या चाहिए और आगे क्या मुझे करना पड़ेगा।

१०

हम दोनों ने ही उठ कर इन्द्र का अभिवादन किया। हमने इन्द्र की प्रेयसीका भी अभिवादन किया—उनके मधुर हाथोंको स्पर्श कर। फिर हम सभी मानो मित्र हो रहे थे। इन्द्र भी वहीं हरी दूब पर बैठ गए। हम सभी मानो चार न होकर एक हो रहे थे। हम सभी में न कोई दिखावा था, न भय का लेश ही! इन्द्र की आँखों में करुणा झलक रही थी—देखो तुम्हीं एक ऐसे अभागे हो जो इस नीरवता में तपश्चर्या की अग्नि में झुलस रहे हो। इन्द्र बता रहे थे—अभी मैं समस्त राज्य का भ्रमण कर आ रहा हूँ। सर्वत्र मादकता है, सर्वत्र केलि क्रीणा है, सर्वत्र विहार है—सभी एक दूसरे में विभोर—नहीं जानते किधर अपने समय को गुजार रहे हैं। परन्तु रंगीनी से जब इधर आता हूँ, तो मुझे अजीब विषमता दृष्टिगोचर होती है। आज मैं खोज रहा था तुम्हें कि, किधर निकल गए! देखा तो यहाँ बैठे हो—जहाँ आज तक किसी ने आने का गुमान भी न किया। वास्तव में क्या तुम दोनों सुखी हो इस तरह! राका तुम्हीं बताओ, तुम इस तरह किस प्रकार पड़ी रहोगी! मुझे तो तरस आता है तुम्हारे ऊपर!

राका ने कहा, सौभाग्य है, आप हमारा इतना ख्याल रखते हैं—जब कि राका कुछ कुछ शर्मा भी रही थी—मैंने कहा मैं स्वयं ही इस समय सोच रहा

था, मैं राका के लिये क्या कुछ कर सकता हूँ। मैं राका की भलाई सोचता हूँ तो मुझमें अपनी भलाई याद हो आती है। मैं सोचता हूँ, मेरा भविष्य क्या है, मेरी आकांक्षा क्या है, मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है? मेरा अन्त क्या होगा—मेरे सामने मानों ब्रह्मांड नाच उठता है—मैं क्या बताऊँ! मेरे कुछ समझ में ही नहीं आता। महाराज आप ही बताइये मैं क्या कर सकता हूँ—मुझे क्या कुछ करना चाहिए! राका की तड़पन अब मुझसे देखी नहीं जाती—मैं चाहता हूँ राका सभी की भांति विहार करे—अपने दुःख दर्दों को भूल जाए! परन्तु यह मुझसे विलग ही नहीं होना चाहती—मैं क्या करूँ, मुझे मेरे भविष्य की चिंता खाए डालती है!

इन्द्र की प्रियतमा भी मेरी ओर से कम हमदर्दी नहीं रखती थीं। उनकी आँखें सजल हो उठीं। उन्होंने कहा—चलिये महाराज! यह दोनों दुःखी प्राणी हमें भी दुःखी बना कर रहेंगे। न तो इनको कोई रोग है, और न ही इनकी कोई दवा है। मुफ्त में ही हम इनसे करुणा करते हैं और इन्हें भी अपने दुःख दर्दों की याद दिलाते हैं। परन्तु मैं कह रहा था, महाराज कितना सुंदर है मर्त्यलोक—जहाँ प्रेमी और प्रेमिका जीवन भर के लिए आबद्ध हो जाते हैं और जब कि कर्म और श्रम उन्हें थकाए डालता है—जब भी दोनों मिलते हैं, तो यह मिलन ही उन्हें सुख की चाह देती है। फिर पुरुष और स्त्री एक दूसरे की सुविधा रखते हैं, यदि न रखें तो किसी का भी जीवन सुखकर नहीं हो सकता। परन्तु यहाँ तो केवल राका ही राका है! मैं भी भूल जाता अपने को राका में—यदि राका भी उसी प्रकार होती जैसा मैं हूँ! परन्तु मैं जानता हूँ, राका मुझसे हमेशा प्रेम नहीं कर सकती। उसकी प्यास तृप्त होते ही उसमें उदासी आने लगेगी, फिर वह मुझसे वैसा प्रेम न कर सकेगी जैसा इस

समय करती है। यहाँ तो सदा की तृप्ति है। न है यहाँ कर्म, न है यहाँ परिश्रम, और न ही है सुविधाजनक प्रबन्ध। फिर यह तो स्वर्ग लोक है, मैं नहीं तृप्त कर सकता—राका की अतृप्त रसना को!

मेरे वाक्यों में स्वार्थ की स्पष्ट झलक थी। इसे इन्द्र समझ रहे थे। वह जानते भी थे मेरे भविष्य को। परन्तु अनमनी राका इसे नहीं समझ रही थी। वह तो दीवानी बनी थी, भोली भी अवश्य थी और एक समय इन्द्र ने राका को गुप्त रूप से बुला ही भेजा। मैं क्या जानूँ क्यों बुलाया है? मैंने समझा शायद मेरे भविष्य का कुछ निपटारा हो, या फिर शायद राका को मेरे साथ पृथ्वी पर जाने की और मेरी जीवन संगीनी बनने की स्वीकृति दे रहे हों। मुझे कुछ भय भी हो रहा था—आज स्वर्ग में पहली बार मुझे अजूबा अनुभव हो रहा था—मानो मुझे कहीं घोर नीरवता में ढकेल दिया गया हो। मुझे न तो ठीक से साँस आ रही थी, न दिल ही धड़क रहा था। कभी दिल की धड़कन बंद हो जाती, तो चेहरा सफेद हो उठता था और मेरा अन्तःकरण गवाही दे रहा था—मेरे ऊपर विपत्ति आनेवाली है।

राका की याद मेरे लिए अटूट थी। आज राका साथ में न थी तो मुझे उसके बिना न मालूम कैसा लगता था! और जब कि मुझे कुछ करने को था ही नहीं—मैं अपनी कल्पना की दौड़ान को दौड़ा रहा था - क्यों न राका से पृथ्वी पर चलने को कहूँ! वह मेरे साथ जंगलों में रहे—मेरी जीवन-संगिनी बन जाये! मुझसे यह प्रतिज्ञा करे, वह मुझसे विलग कभी न हो! परन्तु मुझे इसमें संशय भी अवश्य था—क्योंकि राका तो भोगों की रूपान्तर थी—वह कैसे पाती मेरे साथ अनन्त सुख और विहार को! यदि अब तक वह मेरे साथ रह सकी थी, तो केवल इसी लिए क्योंकि उसमें आकांक्षा

की असीम अग्नि थी और वह आकांक्षा यदि पूर्ण हो जाती—तो फिर वह न मुझसे प्रेम करती, न वह मुझ पर करुणा करती! फिर मैं कहीं का न रहता। राका को स्वार्थी कहता। मेरी आकांक्षा फिर मुझे ही दहला डालती। मैं शहर छोड़ जंगल में आया था तो आकांक्षा से ही भाग कर! यदि जंगल में भी मैं शान्ति से न रह पाता, तो फिर मुझे कहीं भी ठौर न मिलता। मुझे तब इस संसार से निकल भागने में ही त्राण नजर आता, क्योंकि राका की तृष्णा का पूर्ति मेरे लिए अनोखी चाह होती! मैं उच्छृङ्खल होकर पागल हो जाता—जब मुझे राका न मिलती, जब मेरा आकांक्षा बलवती होती, जब मेरा चरित्र नष्ट हो चुका होता! मैं जानता था, राका मेरी जीवन-संगिनी होकर नहीं रह सकती। मुझे भी निरसता हो रही थी—मेरे जीवन से —फिर भी राका एक अपूर्व आकर्षण थी मेरे लिए।

मैं अनमना सा हो रहा था—कहाँ चली गई राका, मुझे अकेला छोड़कर! तभी मैं बाहर निकल कर नीरव उद्यान, विशाल गगन के नीचे टहल ही रहा था—जब कि हरियाली सभी ओर अपना साम्राज्य फैलाये हुए थी—मुझे सामने दिखाई पड़ा एक विमान, जो उतर रहा था मुझसे काफी दूर पर। एक ओर से राका भी आती नजर आ रही थी। पर राका पर दृष्टि पड़ते ही मैं प्रसन्न हो उठा। मानों मेरी प्यास तृप्त हो उठी थी—परन्तु सामने विमान पर उस तीव्र ज्योति युक्त पुरुष को देख कर मैं सहम उठा। हैं! यह तो कामदेव! और कामदेव के स्मरण मात्र से मैं काँप उठा! फिर यह तो शर प्रत्यंचा को धारण भी किए हुए था—देख रहा था—मेरी ओर अपने बलि बकरे पर। मुझे शीघ्र ही भस्म कर सकता था—शायद मुझे कहीं का न रख छोड़ता—मेरी राका मुझसे विलग हो जाती—मैं पागलों की भांति कुछ समय

के लिए हो जाता ! मेरे सामने मेरा काल नाच उठा। मुझे राका की याद हो आई और जब कि कामदेव अपने कार्यों में देर करता ही क्यों ! मैं भय और विह्वलता में राका के सामने दौड़ चला—मानों वह मेरी रक्षक थी, मेरी प्रेयसी थी—उसने अपने हृदय को ही मेरे ऊपर निसार दिया था !

राका ! राका ! मुझे बचाओ—बचाओ राका ! और मेरे भावावेश और मेरे प्रेम ने राका को कुछ क्षणों के लिए अवाक् कर दिया। जब कि कामदेव का वाण मेरे वक्षस्थल पर लगने ही वाला था—राका ने उसे अपने वक्षस्थल में घुसा लिया—फिर उसने अपलक नेत्रों से वाणों को निकाल फेंका !

कामदेव अवाक् था, इन्द्र भी पददलित हो चुका था। राका आज समस्त स्वर्गलोक में पहली बार काम की शिकार हुई थी। उसने मेरे गले में हाथ डाल दिया। मुझे हिलोरे देने लगी। मेरे सामने उसने अपूर्व नृत्य का प्रदर्शन कर डाला। जब राका मुझमें लीन होना चाहती थी—मैंने उसे अपने पास से हटा दिया—तो राका बदहवाश हो भाग चली, वह कहाँ गई पता नहीं—परन्तु कहीं गई अवश्य—और मैं अकेला ही रह गया, अपने साँस को रोकता हुआ ! मेरा हृदय फटा जा रहा था। मैं फिर भी पुरुष था—मुझे कुछ राहत का अनुभव हो रहा था—अपने महान् भय से मुक्ति पाकर !

११

राका कितने ही दिनों तक न लौटी। मुझे इन्द्र के पास ही समय को गुजारना पड़ा। जब राका को होश हुआ, तो वह कुछ शिथिल हो चली थी। मेरे सामने वह अपने पीले चेहरे को लेकर आई! और आकर मुझसे लिपट कर रोने लगी—जब इन्द्र और उसकी प्रेयसी वहाँ से जा चुके थे —मुझे और राका को छोड़ कर अपने हाल पर! राका मुझे लेकर चल पड़ी थी—पुराने नीरवता में जहाँ वह मुझमें शांति को प्राप्त कर पाती—क्योंकि उसकी महान् महत्वाकांक्षा शान्त हो चुकी थी। उसे तरस आ रहा था मेरे एकाकीपन पर!

राका! मैं चाहता हूँ अब तुम मुझे भूल जाओ! मैं नहीं चाहता तुम अपने क्षणिक स्वर्ग लोक के वास को इस प्रकार दुःखी और बिना सुख भोगों के गुजार दो। तुम्हें तो सुख भोगने के लिए यहाँ पागल होना चाहिए। क्योंकि फिर से जब तुम्हें मर्त्यलोक में जाना पड़ेगा, तो फिर तुम्हें कर्म करना पड़ेगा—तुम्हें सुखों के लिए तड़पना पड़ेगा—तुम समाज के बंधन में होगी—क्योंकि वहाँ पर है साधनों की सीमितता, फिर वहाँ पर परवशता भी पग पग पर है। राका! तुम जानती हो, मर्त्यलोक में कोई भी नर, स्वर्ग की भाँति विहार नहीं कर सकता—क्योंकि वहाँ विषमता है—सभी क्षेत्रों में विभिन्नता है—वहाँ

रूप, रंग, गंध, फिर धन, शरीर और सौभाग्य आदि सभी में घोर अलगाव है। राका! तुम्हें सिहरन होती है—नर लोक को याद कर! क्योंकि तुम्हें वहाँ वापस जाना ही पड़ेगा—क्योंकि वहाँ पर भूख है, प्यास है, फिर वहाँ है शीत और गर्मी, मान और अपमान है—और है वहाँ तीव्र आकांक्षा—प्रत्येक वस्तु की, प्रत्येक भोग की, प्रत्येक मानव में—यहा तो है वहाँ का संघर्ष! यही तो है वहाँ का जीवन! फिर यही है मनुष्य लोक का विधान।

राका मचल पड़ी! फिर भी वह शिथिल थी। कामदेव के वाणों ने उसे कहीं का न रखा। वह इस समय पूर्ण विश्राम चाहती थी। मेरे कटु वर्णन को शायद वह न सुन सकी न समझ सकी। आज जीवन में पहली बार उसे निद्रा आ रही थी—वह मेरी गोद में अपनी आँखों को बन्द भी करती और फिर खोल देती। मानो अपने सपने में मुझे संजोना चाहती थी। उसे अतीव सन्तोष था मेरे साथ—उसकी आकांक्षा का अन्त फिर भी न हुआ था। जब कि उसका शरीर विश्राम की खोज में था—वह मेरी गोद में ही प्रगाढ़ निद्रा में सो गई। मैं बैठा ही रहा, उसके उज्ज्वल मुखड़े को देखता हुआ, उसके मधुर बालों को भी सुहलाता रहा – आज पहली बार मेरी आकांक्षा में झांझावात हो रहा था—परन्तु मैं क्या करता—राका के बालों से मेरी उँगलियाँ तीव्र हिलोरें लेने लगीं। मैं बैठा ही रहा—भावावेश में! मेरे निर्निमेष नेत्र उसके रूप को देख तृप्त होते न अघाते थे—कितनी थी करुणा! कितनी थी मादकता! कितनी विलासिनी थी राका!

राका की तन्द्रा टूटी, तो वह अब स्फूर्ति में थी—वह भूल चुकी थी—उसे कामदेव के वाणों ने आघात पहुँचाया था। अब इस समय अपनी स्वाभाविक उमंग और नवीन प्रेम के साथ उठ खड़ी हुई थी—भूल चुकी थी

अतीत को जब वह घोर काम के वशीभूत हुई थी और भाग चली थी मुझे अकेला छोड़कर ! फिर अब राका में परिवर्तन स्पष्ट लक्षित हो रहा था। राका अब पहले जैसी अनुदार न रही। अब वह देवताओं के साथ विहार करने भी जाती और फिर वापस लौट आती। अब राका के प्रति मेरे में करुणा भी न रही—उसके त्याग, असुख, उसकी महान् प्यास और चाह पर ! अस्तु राका अब सन्तुलित हो चुकी थी। वह अब देवांगना थी और मुझमें उसके प्रति कोई भय या शोक न रहा। परन्तु मुझे अब अकेलापन अनुभव हो रहा था और जब मैं अकेला था ही—तो कितनी ही रमणियाँ देवों को छोड़कर मेरे पास आ बैठतीं—कहतीं चलो मेरे साथ तुम्हें सैर करा लाऊँ—मन्द-मन्द समीर में, केलि क्रीड़ा के स्थलों में, जहाँ सुरम्य घाटियाँ हों, भव्य उपवनों का दृश्य हो और तुम मुग्ध हो जाओ मेरे साथ—अपनी सुध बुध खो डालो !

राका ! राका ! तुम आ गई ! जब कि समस्त देवांगनाएँ छट चुकी थीं—मैं राका के साथ अकेला ही था—राका मुझे तुम्हारे बिना कुछ अच्छा नहीं लगता। अब मुझे तुम वापस मेरे जंगल में पहुँचा दो। मैं वहाँ से फिर शहरों में चला जाऊँगा—गृहस्थी बसा लूँगा—शेष जीवन को मुझे गुजारना तो है ही राका ! मेरे सामने अभी जरा आएगी। फिर मुझमें रोगों का प्रादुर्भाव होगा और जानती हो राका इसके बाद मुझे क्या होगा—मेरी मृत्यु होगी—पता नहीं मैं कहाँ जाऊँगा, परन्तु अभी मुझे घोर कष्टों को भोगना है ! मैं कैसे भोग सकता हूँ स्वर्ग को, और कब तक भोग सकता हूँ—मैं नहीं चाहता मैं अपमानित होकर यहाँ से जाऊँ ! राका की पुरानी आकांक्षा फिर जाग्रत हो उठी ! उसने चाहा वह मुझे आखिरी बार

अपने में समेट लें। परन्तु मैंने उसे हटा डाला। राका अब बदहोशी का वक्त नहीं, मैं जो कहता हूँ उसे सुनों। मुझे वापस मर्त्यलोक में पहुँचा दो।

राका के प्रेम में आकांक्षा ही मुख्य रूप से उत्तरदायी थी। मुझसे राका प्रेम इसीलिए करती थी—क्योंकि मैंने उसकी आकांक्षा को सर्वदा अतृप्त रखा। यही कारण था, राका में जाने अनजाने अनोखे प्रेम का उद्‌भव हुआ था—यह वैसा था—मानों माँ की ममता पुत्र से हो—उस पुत्र से जिसे वह अपना समझती हो और जो उसे माँ के नाम से पुकारता हो। फिर यह प्रेम वैसा भी था जैसा किसी स्त्री का अपने पति से होता—जो पति ही स्त्री के साथ विहार करने का अधिकारी था—उसे तृप्ति प्रदान करना, फिर उसे ही अपनी आकांक्षा में संजोता फिरता। इसीलिए प्रेम तभी तक संभव है, जब तक आकांक्षा हो। आकांक्षा न रही तो न प्रेम रहा, न मादकता, न कलोलें और न गार्हस्थ्य जीवन ही। राका मानों मर्त्यलोक के सारे गुड़ों को अपने अन्दर पैदा कर लाई थी और मेरे आग्रह पर, मेरे दबाव पर, मेरी जिद पर कि मुझे वापस पहुँचा दो—वह बिलख पड़ी। बिलख ही क्यों वह उदास हो गई। उसकी आँखें हरदम गीली ही रहीं—मानों मेरे वापस जाने की याद मात्र से उसकी असीम आकांक्षा छिन जाती। उसका मानसिक सुख दूर हो जाता। वह फिर से भूल जाती अपने को पार्थिव और दैहिक भोगों में। राका में जो अपूर्व सुख इस समय भी विद्यमान था, वह था उसका भावात्मक सुख, जो मेरे साथ रहने से उसे प्राप्त हुआ था। इसीलिए तो वह मुझसे विलाग होना ही नहीं चाहती थी। वह यह भी जानती थी—मेरा सुख अनुभव उसके लिए सुख हो जाता

था, मेरा भावावेश भी उसके लिए अदायुक्त होता था और जब मैं कुछ-कुछ उदास होता था, तो मानों मेरी उदासी उसमें जाकर भी क्रियाओं का प्रादुर्भाव करती थी, वह मेरे चारों ओर घूमने लगती थी—मुझे प्रसन्न करने के लिए, मुझे अपने विचारों को भूल जाने में। जब कि राका अपूर्व सुन्दरी थी—मैं फिर से उसकी मादकता में भूल जाता और उसके साथ कलोलें करता, विहार करता और खिलखिला पड़ता उसकी शोख अदा पर, जब वह अपने घुटने में अपने चेहरे को छिपा लेती और देखने लगती दूर क्षितिज पर—क्योंकि ऐसा स्वांग उसका समस्त इन्द्रपुरी में अनोखा था और वह दिखाती थी—वह मुझसे रुठ चुकी है—जो बनावटी भी है, और वह चाहती है—मैं उसे मनाऊँ और वह मान जाए।

मेरा चैतन्य राका के लिए कम महत्वपूर्ण न था, फिर राका का विलास भी मेरे लिए नगण्य कैसे होता! राका का दुःख मुझे दुःखी करता। राका का सुख मुझे सुखी भी करता। यही हालत थी राका की। मेरे हाव-भाव भी उसपर अनोखे रूप में प्रभाव डालते। और जब कि आज मैं उदास था! आज जब कि मैं जिद कर रहा था—राका तुम इन्द्र से कह दो, मुझे पृथ्वी पर जाना है! राका अवाक् थी! बिछुड़ने की अपूर्व अकुलाहट थी—राका की आसक्ति हो चुकी थी मुझ पर! वह सिहर उठो—मैं कैसे रहूँगा मर्त्यलोक में! परन्तु मुझमें भी कम आसक्ति न थी राका से—क्योंकि मेरी भी राका के साथ आकांक्षा छिपी हुई थी और मुझे दुःख था इस बात से—राका फिर मुझसे मिल कर सुख का अनुभव न कर सकेगी, मेरे जाते ही राका का भावात्मक सुख फिर विलीन हो जायगा—राका फिर अपने को भूल जायगी देवताओं के साथ विहार में!

इन्द्र ने मेरी पीठ थपथपाते हुए कहा, मुझे दुःख होता है—तुम वापस जा रहे हो! राका की देखो सजल आँखें, तुम्हें दया नहीं आती! पुरुष होते ही हैं ऐसे—निर्मोही! और श्रीमती इन्द्र भी करुणा से द्रवित हुए बिना न रह सकीं। राका! तुम्हीं जाओ न पहुँचा आओ—फिर वापस आना! देखो अभी तुम्हारा विशाल जीवन पड़ा है—स्वर्ग भोग के लिए! तुम निश्चय ही भूल जाओगी—स्वार्गिक सुख भोगों में—क्योंकि तुमको यहाँ हरदम सुखों की, कोमलता को और अजीब मादकता की अनुभूति होती ही रहेगी—तुम कभी भी अपने को उससे विलग न होना चाहोगी।

राका का विमान जब वापस जंगल में उतरा तो मेरी झोपड़ी अभी यहाँ वर्तमान थी। मुझे याद हो आई पुरानी नीरवता। मुझे फिर से उस झर झर की ध्वनि सुनाई दे रही थी। राका! तुम देखो यहाँ कितना सुहावना दृश्य है! परन्तु हमारे भोग प्रसाधन अधूरे हैं। तुम यहाँ के योग्य नहीं हो, राका! जाओ राका वापस! राका मुझसे आलिंगन भी न कर सकी! क्योंकि राका का सपना टूट चुका था। जब कि मैं उसे बिदा कर रहा था—उसका उदास चेहरा, उसकी सजल आखें और करुड़ापूर्ण हृदय, हमेशा के लिए मुझे छोड़ कर ओझल हो चुका था! मैं अकेला फिर से रह गया था—अपने नसीब पर रोता हुआ। मेरे हृदय की पीड़ा और जलन इस समय मेरे समस्त शरीर में आग जला रही थी, मैं व्याकुल हो रहा था—और मालूम ऐसा देता था—समस्त ब्रह्मांड ही जला भुना जा रहा था—अब प्रलय होने ही वाला था!

तुम्हें क्या हो गया है—प्रेम! तुम इस प्रकार छटपटा क्यों रहे हो! तुम्हारा चेहरा भी क्यों विकृत हो रहा है? बोलो न, क्या हुआ तुम्हें! क्या कोई पीड़ा हो रही है?

और जब कि मैं जाग्रित हुआ और देखता हूँ सजनी को सामने, तो दोनों हाथों को बढ़ाता हुआ—मैंने छिपा लिया—सजनी को अपने वक्षस्थल में। सजनी ! सजनी !

यह सब क्या हो रहा है प्रेम ! तुम पागल हो गए हो क्या ! कोई सपना देखा है तुमने ? तुम्हारी ऐसी हँसी मुझसे अब नहीं बर्दाश्त होती ! हर दम मुझसे छेड़खानी करते रहते हो—सभी कहते हैं तुम स्त्री के गुलाम हो !

नहीं सजनी मैं गुलाम नहीं, मैंने एक अजीब सपना देखा था—तुम रुठ कर यहाँ से जा रही थी—अपने मायके ! और जब मैंने कहा तुम नहीं जा सकती—तुम अपनी जिद पर अड़ी ही रही। जानती हो सजनी राका नहीं रही और तुम भी चली जाती तो क्या होता—मेरा जीवन शून्य हो जाता—और इसीलिए तो मैंने तुम्हें अपने में छिपा लेना चाहा ! तुम्हें पुकार भी बैठा राका ! साका !

हैं ! यह राका कौन सी बला है ! और जब कि सजनी की सकुचाहट और उसका लजीलापन जा चुका था—वह फिर से पूछ रही थी—कौन है यह राका ! साका !

यह राका देवलोक की सुंदरी है सजनी ! इसने मुझे देवलोक की सैर कराई थी। मुझसे प्रेम करती थी—बेहद ! परन्तु एक था—मैं—उसे ठुकरा आया, उस स्वर्ग को भी ठुकरा चुका और मैंने इन्द्र से भी बात की थी सजनी ! राका की जगह अब तुम ही तो हो !

चलो हटो ! तुम तो हमेशा ऐसी ही बात करते हो। दिन भर सोते हो। न कुछ काम न काज। और लो चाय पीलो। आज चलो शाम को कहीं घूम आएँ, थोड़ा मन बहलाव हो जायगा।

१२

प्रेम! तुम जानते हो, मेरा सबसे बड़ा सुख क्या है—वह केवल तुम ही हो! क्योंकि हम एक ऐसे वृक्ष को चाहती हैं, जिसकी सघन छाया में हम सुख पूर्वक जीवन को गुजार दें। प्रेम तुम नहीं समझ सकते स्त्रियों के अगाध हृदय को! स्त्रियाँ यदि कुछ चाहती हैं, तो केवल सुरक्षा और चाहती हैं अपना कोई दास, जो तुम्हारी तरह हो—और मुझसे कभी विलग न होना चाहता हो।

समुद्र की हिलोरें इस समय भी अशांत थीं और मन्द हवा के झकोरों से सजनी का पल्ला उड़ रहा था—शाम के समय में—जब कि सूर्य अपनी अनोखी अदा के साथ समुद्र में डुबकी लगाने जा रहा था, आधा डूब भी चुका था—मानों अब वह परवश होकर काल के गाल में जा रहा था—तभी तो उसका समस्त प्रकाश विलीन हो रहा था, चिड़ियाँ भी अपने घोसले पर लौट कर पहुँच रही थीं—मैं जहाँ था वहाँ केवल सजनी थी और कोई भी न था।

तुम नहीं जानती सजनी! भोग क्या है—और उसकी मादकता क्या है! सचमुच तुम जानती ही नहीं—असली सुख क्या है? परन्तु मैं जानता हूँ उस

असीम सुख की आग को, जहाँ पर केवल सुख ही सुख हो, न हो वहाँ दुःख, न परवशता, न सुरक्षा और न दास और दासियाँ।

हुँ! तुम मूर्ख हो, जो मुझे मूर्ख बनाते हो। जाओ मैं तुमसे बोलूँगी ही नहीं। पता नहीं कैसा सुख-दुःख का रोना ले खड़े होते हो—मानों कहीं आसमान से टपक पड़े हो। बात बनाना तो कोई तुमसे सीखे! तुम्हारी आदत ही है, मुझसे हमेशा कहते रहते हो—मैं नहीं जानती। क्या नहीं जानती? तुम्हारी कौन सी बात मुझसे छिपी है—मैं तुम्हारी रग रग को पहचानती हूँ।

अच्छा सजनी चलो अब चलें, तुम जीती और मैं हारा! अब कभी नहीं कहूँगा—तुम नहीं जानती। और सजनी के साथ जब मैं लौट रहा था, कितने ही प्रेमी और प्रेमिकाएँ बगल से निकलते जा रहे थे—उनके अन्दर आकांक्षा का घोर तूफान छिपा था—परन्तु फिर भी उन्हें स्पर्श सुख का ही आभास था। यही तो था मर्त्यलोक का सुख, आकांक्षा के अन्दर सुख था—इसी आकांक्षा की अतृप्ति ही उन्हें आनन्द विभोर करती थी। नवीन प्रेमियों के लिए विहार ही अजीब मादकता थी। फिर भी इस विहार में थी निष्कलुषता, क्योंकि विहार तो तभी तक विहार रह सकता है—जब तक उसमें अतृप्ति रहे, प्यास की चाह हो, आपसी सान्निध्य का अपूर्व भास हो।

सजनी! क्या तुम वास्तव में मुझसे प्रेम करती हो!

हुँ! तुम ऐसा प्रश्न ही पूछते हो, जो मूर्खता का प्रतीक हो। तुम्हारा तो नाम ही प्रेम है, फिर तमसे कौन न प्रेम करेगा! स्वर्ग की उर्वशी भी तुम पर निछावर कर दे अपने आपको! बड़े सुन्दर हो न! मैं ही हूँ ऐसी जो तुम्हारे गले से मढ़ गई। कौन पूछेगा—तुम्हारे मनहूस चेहरे को!

सजनी का व्यंग मुझमें मुस्कुराहट ला रही थी और मैं सजनी को दिखा रहा था—देखो सजनी दूसरों का सुख ही हमें सुख देता है। दूसरों का भोग ही हमारे मन को लगाए रहता है। आज की शाम कैसी अच्छी तरह कट रही है। यदि तुम न होती सजनी तो मैं उदास हो जाता। मेरे जीवन में कोई राग न होता।

तो क्या तुम चाहते हो कि मैं मर जाऊँ! तुम्हारी यही मंशा दिखाई देती है। क्षमा करना, मैं तुमसे बहुत बढ़ चढ़ कर बोलती हूँ—परन्तु तुम्हारी बातें ऐसी होती हैं कि, हरदम मुझे बुरा लगता है। मैं जानती हूँ, तुम मुझसे प्रेम करते हो। परन्तु मुझमें ऐसा कौन सा अजूबापन है—तुम मुझमें न पाते तो तुम्हारा जीवन व्यर्थ जाता! रहने दो, इन सब बनावटी बातों को। मुझे बनावटी चापलूसी और हृदयहीन बातों से सख्त नफरत है।

तुम तो सजनी समझती ही नहीं और बात-बात पर नाराज हो जाती हो! तुम मेरे हृदय की गहराई में झाँको तो देखो, मेरे अन्दर क्या क्या छिपा हुआ है! खैर जाने दो इन बातों को, और हाँ! कल जो मुझे तन्खाह मिलने वाली है, उसका कुछ खरीदना है तुम्हें—यदि न आवश्यकता हो, तो मैं हो अपने लिए एक नई हैट खरीद लूँ। कैसा रहेगा—शाम को घूमने के समय?

जाओ मैं तुमसे अब बहस नहीं करूँगी। अपने वेतन का जो चाहि सो करो, मैं थोड़े ही कमाती हूँ, जो उस पर अपना अधिकार दिखाऊँ!

हम लोगों की शाम क्या थी—आज राका के स्वप्न ने उसे झगड़े में बदल डाला। मैं फिर कभी याद न करूँगा राका की। शाम का भोजन हम सभी ने शान्ति पूर्वक सम्पन्न किया। मुझे भय हो रहा था, आज

मैं अपने सन्तुलन में नहीं हूँ। और जब कि मेरा जीवन शान्त था—मेरा एक ही उद्देश्य था—अपनी जीविका का उपार्जन और सजनी की प्रसन्नता।

मेरी शान्ति इसीलिए थी, क्योंकि मेरे में कोई आकांक्षा न थी। शान्ति को भंग करने वाला कोई भय भी न था—क्योंकि भय तो कामना में विघ्न पड़ने की कल्पना का रूपान्तर मात्र है। मुझमें अहंता का भी अभाव था और ममता भी मुझमें थोड़ी ही मात्रा में शेष थी। अहंता एक बड़ा दुरुह प्रश्न है। मेरे मित्र मुझसे मिलते, उनके साथ उनकी प्रिय पत्नियाँ भी होतीं—तो मेरे मित्रों में एक अहंभाव का प्रदर्शन होता। वह यह दिखाना चाहते—वह मुझसे ज्यादा श्रेष्ठ हैं, तर्क में प्रगाढ़ और मुझसे ज्यादा विवेकी हैं। फिर उनमें यह भावना होती—सजनी उनकी ओर देख रही है—मानो सजनी ने उनकी महत्ता को स्वीकार कर लिया है और उनमें यह हमेशा चाह लगी रहती, वह जहाँ भी जाएँ—सर्वत्र उनमें गुरुता का आभास हो, कहीं भी उनकी उपेक्षा न हो। समस्त रमणियाँ उनकी ओर आकर्षित होती रहें, समस्त पुरुष भी उनका आदर सत्कार करें और वह जिधर भी निकल जाएँ, सभी की आखें उनके ऊपर ही जा पड़ें—मानो उनमें अनोखा आकर्षण था!

परन्तु मेरा आकर्षण अजीब ही प्रकार का था। मुझे मानो संसार में कोई रस ही नहीं मिल पाता था। यदि मेरे में अहंता होती, तो मैं निश्चय ही उसी उन्माद में हर समय डूबा रहता। मुझे हरदम संसार में ही डूबा रहना अच्छा लगता। मुझे मेरी मण्डली में भी रस आता। क्योंकि मित्र मण्डली में मैं चाहता अपनी महानता, अपनी बड़प्पन और श्रेष्ठता का परिचय देना, मेरी सजनी भी मेरी इस श्रेष्ठता और दूसरों से ज्यादा गुड़ी होने का अभिमान करती।

और अन्य दम्पतियाँ भी इससे प्रसन्न न होतीं ! विवाद का अन्त ही न होता। कौन सा चैतन्य अपनी अहंता को भूल सकता था ! फिर कौन सी रमणी अपने पति की तर्क भरी बातों को चमकती और सतृष्ण आखों से न देखती ! इसके अतिरिक्त रमणियों का तर्क भी तो कम महत्वपूर्ण न होता। जब कि विशेष स्त्री का तर्क उसे असाधारण रूप से योग्य और उक्त प्रमाणित करता—तो सभी पुरुष उस पर अपनी कामनाओं को निछावर कर देते और मेरी सजनी ही क्या, समस्त अन्य स्त्रियाँ भी—उस अनोखी स्त्री की सफलता पर जल भुन जातीं ! उनका हृदय हाहाकार करता ! उनमें अहंता की भावना जाग्रित होती। कल की मित्र मण्डली का वह फिर से इंतजार करतीं, दिन भर उन्माद में अपनी विजय का राग संजोती—और फिर जब मण्डली जुटती, तो फिर से वादाविवाद होता, फिर से रुचिकर विषयों पर बहस होती—आज फिर कोई हारता, आज फिर किसी की जीत होती, और जब कि जीते हुए पुरुष पर स्त्रियाँ अनुरक्त होतीं—जीती हुई नारी पर पुरुषों की अनुरक्ति हो जाती। यही तो थी रोज की दिन चर्या, यही तो था मानव का सोमरस—और इसी को छक कर पीते थे समस्त संसार के प्राणी, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष और फिर इसी में विहार करते थे—दिन रात—नहीं जानते थे—कब मृत्यु उनके दर्वाजे पर आ धमकी !

लोग समझते थे, मैं आकांक्षा से रहित और निरा बोदा हूँ। क्योंकि मैं पूर्ण उन्माद से बहसों में, मित्र मण्डलियों में और बाजारों में भी अपनी अहंता का, श्रेष्ठता का और अपने घमण्ड का प्रदर्शन नहीं कर पाता था। मुझे सभी मूर्ख समझते और मैं सभी को मूर्ख समझता। इसी विषय पर सजनी से मझसे झड़प हो ही जाया करती थी। सजनी क्या थी—अहंता की जननी

थी। वह दिन भर यही राग संजोए रहती—दूसरों से विवाद में अपनी श्रेष्ठता का प्रदर्शन करे। दूसरों से ज्यादा सुन्दरी अपने को सिद्ध होने दे। शोख अदा और नाज नखरे भी सजनी में कम न थे—रास्ते भर में मानो सभी का आकर्षण स्थल वह बनना चाहती—खास तौर से तो मित्र मण्डली में। परन्तु जब वह मुझे शान्त देखती, तो मानो जल भुन कर राख हो जाती! वह समझती मझमें कोई शक्ति नहीं, साहस नहीं, मैं हारा हुआ, बुजदिल और दूसरों के सामने नगण्य हूँ।

सजनी आज इतनी अधिक विक्षिप्त क्यों हो! क्या बात है! और तुम्हें तो अब सोना चाहिए। तुम कुर्सी पर बैठी ही बैठी किताबों में खोई हुई हो। कुछ पढ़ भी रही हो, या केवल देख रही हो?

"हुँ! तुमसे क्या इससे, मैं क्या पढ़ रही हूँ, देख रही हूँ या सोच रही हूँ! तुम सो जाओ। सुबह उठना तो चले जाना कारखाने में। शाम को लौटना तन्खाह लेकर, तो मुझसे पूछ लेना—क्या चाहिए तुम्हें—नहीं तो मैं अपने लिए ही ले लूँ!

यह तो मैं जानता हूँ सजनी! आज तुम्हारी बातों का खण्डन जोर शोर से मालती ने कर डाला। वह भी है सुन्दरी, और उसकी तर्क प्रणाली भी तुमसे कोई कम नहीं है। परन्तु इससे क्या हुआ? तुमने भी तो उसको कितनी ही बार मुँहकी खिलाई थी कि, उसे चुप होना ही पड़ा था।

मुझे तो तुम पर क्रोध आता है, प्रेम! तुम इतने ज्यादा आलसी क्यों हो? तुम तो उदासीनों के उदासीन हो। तुमको न तो मेरी हार की फिक्र है, न तुम्हें इससे मतलब है कि, मेरी सहायता ही करो। देखो मालती का पति भी उसकी कितनी सहायता कर रहा था और अब कि मेरी बातों में विरसता हो

रही थी—मेरा चेहरा भी कुम्हला रहा था—मेरे गालों पर शर्म की लाली भी आ रही थी – और हाँ सभी तो देख रहे थे—मेरी पराजय को—और तुम, तुम तो मूढ़ ही बने रहे। सभी तुम्हारी मनहूसियत पर हँस रहे थे।

तो तुम आज सोओगी नहीं सजनी! रात भर जागोगी—मनन करोगी। तुम क्या इसी प्रकार अपने जीवन को गुजार दोगी—अशांत, विक्षिप्त, कभी हर्ष विभोर तो कभी दुःख की अगाध निधि! बोलो सजनी क्या यही जीवन है, क्या यही है सुख? फिर जीवन में कितना सुख है, कितना दुःख—क्या इसका विश्लेषण किया है!

तुम तो दार्शनिक हो और व्यर्थ ही कारखाने में कोयला झोंकते हो। तुम्हें तो कहीं गुरु कुल में कुलपति बनना चाहिए था और तब मेरी भी तुम्हारे साथ रहने में सार्थकता होती। इस समय तो तुम्हारे में कोई बड़ाई, श्रेष्ठता है ही नहीं, मैं भी कभी सफल और असफल हो जाती हूँ—परन्तु मेरे भय का अन्त कभी नहीं होता—मेरा दिल कभी शान्त नहीं होता—उसकी धड़कन निरन्तर चालू रहती है!···

१३

सजनी की परेशानी मुझे संसार में डुबोए डालती थी। यदि सजनी परेशान न होती – वह भी शान्त होती—तो फिर मेरे जीवन में कोई राग न होता ! मुझे कुछ-कुछ सजनी के प्रति हमदर्दी भी हो रही थी, क्योंकि सजनी का सुख ही मेरे लिए सुख था, उसकी उदासी मेरे लिये दुःख। अस्तु अब मैं भी सोच रहा था—अपनी अहंता का प्रदर्शन करूँ, क्योंकि हमारे विवाद का विषय चाहे जो भी रहा हो, हमारी विवाद क्षमता का मूल्य अवश्य था। रात को चाय पर जब हम सभी बैठते, तो श्यामा, या रामा, या फिर मोहन और चुन्नू कोई न कोई विवाद का विषय खड़ा कर ही देते थे—और फिर क्या था—उसमें सभी अपनी अपनी चोंचे लड़ाया करते थे। सजनी भी तो उसमें चोंचे लड़ाया करती। मुझे भी अब कामना हो रही थी, मैं भी उसमें अपनी अहंता का प्रदर्शन करूँ—मानो सजनी की अहंता पूर्ण हो जाए। और यदि मैं असफल रहूँ, तो सजनी का दिल तो टूटे ही, मुझे भी उसकी कम आँच न लगे ! अस्तु आज की गोल में सभी ने आश्चर्य भरी निगाहों से मुझे देखा—जब मैं भी अपनी जबान खोल रहा था।

मैं तो कहूँगा आप सभी गल्ती पर हैं—क्योंकि आप सभी यह नहीं

जानते—लंगूर बन्दर से कहीं ज्यादा चालाक होता है! वह इसी प्रकार ज्यादा चालाक होता है, जिस प्रकार स्त्रियाँ मर्दों से ज्यादा चालाक होती हैं—या गोरे कालों से ज्यादा उच्च सिद्ध होते हैं!

श्यामा कह रही थी—आप तो पहली बार बोले—जरा बुद्धिमानी से बोले, परन्तु आपकी बातें सजनी से कम खतरनाक नहीं। क्योंकि सजनी ने जरूर आपको भड़काया होगा और आप आखिर उभड़ कर असली रंग में आ ही गए।

जब कि हँसी की बहार थी—सजनी गरज पड़ी—तुम मूर्ख हो जो ऐसी बातें करती हो! मुझसे तो जीत ही नहीं पाती, फिर जब हम एक से दो हो जाएँगे तो क्या जीतोगी खाक!

सजनी की बातें भी क्रोध में कम उपहास्य न लगीं और सभी मुस्कुरा पड़े। परन्तु बातों का सिलसिला जारी रहा। मैं उस वाक् युद्ध में कूद ही पड़ा! मैंने सिद्ध कर डाला—जो मैं चाहता था—क्योंकि मैंने अपनी बातों में स्वर्ग, नर्क, पाताल और लोकों की बातें भी बखान डाली थीं। सभी मुग्ध थे। मेरी तर्क प्रणाली पर। परन्तु सभी देख रहे थे—मैं लाल-बुझक्कड़ से कम भी नहीं हूँ। और सजनी आज मुझे हिलोरें दे रही थी, मानो उसकी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था!

मेरा जीवन यों ही गुजरता जा रहा था। अब मुझमें उदासी न थी—अब मुझमें उन्माद था और मैं पूर्ण संसारी हो चुका था। न मुझे याद थी राका की, न स्वर्ग की, न करुणा की लहरी की, क्योंकि संसार तो शुष्क था—यहाँ पर द्वन्द था, यहाँ पर अहंता का घोर प्रदर्शन था—मैं नहीं चाहता था—मेरी क्षुद्रता प्रकट हो, और सभी चाहते थे—सभी की विजय हो। और

जब सर्वत्र से तीव्र लहरें एक दूसरे से टकरातीं तो अपनी उछाल फेकतीं दूर दूर तक। किनारे भी गीले हो जाते, बालू भी जहाँ की तहाँ रह जाते—हमारा द्वन्द चलता ही रहा—चलता रहेगा भी—और यही तो भास होता है—संसार का रस है, उसकी ठोसता है—अन्यथा शुष्क बालू उड़-उड़ कर सर्वत्र जड़ता का दृश्य प्रादुर्भाव कर बैठनो। फिर न होता समुद्र का विहार, न होता वहाँ की केलि क्रीड़ा। क्योंकि समुद्र अपने द्वन्द से ही झीनी झीनी बूंदों की बौछार कर आर्द्रता का प्रसार किए रहता है, जिससे संसारी प्राणी यह अनुभव ही नहीं कर पाते—उनका विहार कैसे गुजरता जा रहा है। उनके सामने ही ऊँची तरंगों वाला समुद्र भी शान्त नहीं रहता, संसारी पुरुष भी द्वन्दों में भूले हुए ही विहार का अनुभव करते हैं—यदि द्वन्द न हो तो फिर विहार का कोई रस ही न हो। हार के बाद जीत और जीत के बाद हार भी तो अपनी अजीब बहारें लिए रहती है। इसी द्वन्द के सहारे और उसके किनारे पर सभी बिना किसी विघ्न बाधा के जीवन व्यतीत करते हैं। यह मालूम ही नहीं पड़ता, यदि द्वन्द न हो—तो फिर न रहे वहाँ की रमड़ीकता, न रहे मादकता—फिर सर्वत्र हो बालुका की उड़ान—शरीर बाल और कपड़े भर जाते—बालुका के निरस प्रहारों से !

मैं संसार में क्यों भूल गया, क्योंकि मेरी वासना कम न थी। फिर मुझमें ममता का प्रादुर्भाव भी हो रहा था और सभी मिल कर मुझमें नवीन नवीन आकांक्षाओं का प्रादुर्भाव कर रहे थे। मेरी आकांक्षा कभी तृप्त न होती—उसी प्रकार, जिस प्रकार मेरा राका से विहार तृप्त न होता, न राका मुझसे तृप्त होती—क्योंकि हम दोनों की ही आकांक्षा तृप्त न हुई—यही तो पहलू

था जीवन की घड़ियों को गुजारने का और फिर जीवन में विरसता भी नहीं होने पाती थी—इस प्रकार।

सजनी मेरे आकांक्षा की मूर्तिमयी प्रतिमा थी। जब मैं थका-मांदा कारखाने से लौटता तो सजनी की सजावट, उसकी मादकता—मुझमें नवीनता का आभास देती। क्योंकि मुझमें वासना सन्निहित थी और सजनी उसकी पूरक मात्र थी। सजनी न होती तो मेरा जीवन अधूरा होता, मुझे कहीं भी सुख न मिलता। राका की भांति ही सजनी भी, मेरी प्यास को अतृप्त बनाए रखती थी और उसकी भी तो प्यास अतृप्त ही रहती थी, क्योंकि वह जानती थी प्यास की तृप्ति के बाद फिर कोई आनन्द न रहेगा—और मेरी बुझती प्यास फिर से बिन बुझी प्यास बन जाती। मेरा थका मांदा होना, मुझमें सुख की चाह लाती, मैं चाहता किसी की गोद में विश्राम और जब सजनी इसे पूर्ण कर ही देती, तो मुझे मीठी मीठी नींद का भास होता और सजनी की प्यास उसमें नित नयी मादकता लाती। वह कर बैठती नृत्य मेरे सामने जब कि मैं ही उसका नायक होता, मैं ही दर्शक होता और मुझ पर ही वह अपनी समस्त शोख अदा, अपनी समस्त कामनाओं का प्रदर्शन और अपने असीम आकर्षण का जाल फैला देती।

सजनी! मैं तो समझता हूँ तुम सभी में सुन्दर हो—क्योंकि तुम्हारे में घोर भोग छिपा है। तुम कितनी लालसामयी हो और तुममें सुख का अखंड भंडार है। तुम्हारा सुख देख कर मुझे भी सुख होता है, मेरी वासना की तृप्ति का साधन भी तुम्हीं हो। फिर तुम तो मुझमें भूल जाना चाहती हो, तुम मुझे अपना समझती हो—और यही कारण है, तुम्हारी चमकती आँखों और तुम्हारे प्रेम में मैं अपना सब कुछ भूल बैठता हूँ। आज

का तुम्हारा नृत्य क्या था—मेरे जीवन का अनोखा क्षण था ! फिर ऐसा समय भी तो बहुत कम आता है ! हमारी आकांक्षा आज जितनी प्रज्ज्वलित है, उतनी तुम्हारी भी है और इसीलिए आज का नृत्य तुम्हारा इन्द्रपुरी को भी मात कर रहा था। उसमें चार चाँद तो तब लग गया, जब हमारे दिल में धधकता शोला न मालूम कब से सुलग रहा था।

मुझे दो दो बच्चे भी हो चुके थे—एक पुत्र और एक पुत्री—सजनी के अगाध प्रेम के रूपान्तर मात्र थे। मेरी भी ममता कम न थी, क्योंकि मैं चाहता था—मेरे पुत्रों से मुझे सुख मिलेगा, मेरे पुत्र मुझसे प्रेम करेंगे और अपनत्व को भावना हम सभी को विभोर किए डालती थी। हमने अपने लाड़लों की समस्त आकांक्षाओं की पूर्ति करनी चाही ! फिर भी आकांक्षा तो आकांक्षा ! किसकी पूर्ति होती है, और कब होती है ? मेरे लाड़लों की भी अकांक्षा समाप्त न हुई, न हम उसकी पूर्ति कर सके—यही तो कारण था हमारी ममता का।

जीवन डोर तो अटूट ही रहती है, चाहे वह बालक की हो, या युवा की, या वृद्धा की। जब सजनी का यौवन ढल रहा था, मैं भी प्रौढ़ हो चला था—हमारी अभी भी जीवन डोर समाप्त न हुई थी, क्योंकि हमारे में आकांक्षा अभी भी शेष थी। हमारी अहंता में कोई कमी न आई थी। हमारा राग और द्वेष भी कभी से कम न था। दूसरों की भरी पूरी जवानी, उनकी केलिक्रीड़ाओं और उनके वासनामय जीवन से हमारा अतीत याद हो आता था—उन पर स्नेह होता था—और मधुर मुस्कान हमारे गालों पर खेलने लगती थी। हमें असहायता भी होती थी—क्योंकि अब वह असीम प्यास न रही, न वह आकांक्षा रही, फिर भी सजनी का अपनत्व मुझे सुखकर था।

मैं सजनी को कैसे भुला सकता हूँ, जो मेरे सामने अपने लाड़लों की बातें करती, फिर पड़ोसियों की बातें करती, स्त्रियों की भी बातें करती—कहती श्यामा आज सपरिवार दिल्ली घूमने गई है, शायद आगरा भी जाए और मथुरा बृन्दावन भी ! अपनी आकांक्षा भी हम संजोए रहते। जब सजनी कहती —कौल ने अपनी शादी कर ही डाली। उसका प्रेमी है सुन्दर ! फिर कल उन दोनों की शादी का समारोह है। हमें भी तो निमन्त्रण आया था—कल चलोगे न !

मेरे बच्चों की उज्ज्वलता हमारे में उल्लास का वातावरण पैदा करती। मेरे बच्चे बड़े हो रहे थे—अपनी सुगढ़ता, अपनी शिक्षा और अपनी मनोहर अदाओं से सभी को मुग्ध करते थे। हम भी अपने अपनत्व में विभोर हो जाते थे। अब हमारी कामना थी—हमारे बच्चों का नाम रोशन हो, हमारे सभी मित्र उससे हमारे में गुरुता का अनुभव करें, हम भी समाज में सर ऊँचा कर घूम सकें।

चाहे हम बूढ़े हो चुके, फिर भी हमारा संसार का बन्धन न टूटा। हमारी जड़ लगी ही रही ! उसे उखाड़ने वाली कहीं भी कोई युक्ति न रही ! क्योंकि अब भी हमारे दिमाग में सांसारिक बातें भरी पड़ी थीं। अब भी हम अपने को श्रेष्ठ होने का दावा करते—विशेष कर नवयुवकों के सामने—जिनके सामने हमें यह भास होता, हम लम्बी-लम्बी मंजिलों को पार कर चुके हैं, और उन्हें अब भी करना बाकी है। वह नवीन पीढ़ी भी तो हमें आदर की दृष्टि से देखती, हमारी सलाहों, मशविरों पर अमल भी करती थी। हम अब समाज के मानों पुरोहित हो रहे थे। समाज के विधानों में हमारा भी महत्वपूर्ण भाग था। हमारा होनहार पुत्र भी अब शादी के योग्य हो चुका

था। हमने अपनी पुत्री की शादी कर ही डाली थी—अब पुत्र की शादी भी कम महत्वपूर्ण न थी। शादी का स्मरण मात्र हममें सुख देता, प्रसन्नता देता, हममें गुरुता का आभास होता और हम अपनी दुनिया में ही डूबे रहते। निश्चय ही कुछ समय के लिये तो हमारा मूल्य ही मूल्य नजर आता।

बूढ़ों की दुनियाँ में फिर भी निरालापन ही रहा। मुझमें भी कम परेशानी न रही। यद्यपि मेरे अन्य बूढ़े मित्र भी यदा कदा आकर हमारे दिल को लगाते ही, परन्तु अब न तो रही वह पहले की उमंग, न रही वह शोख अदा, न श्यामा की मुस्कुराहट—जिस पर हम सभी अपने आप को भूल जाते। फिर न रहता वह धड़कता हृदय, जिसमें आपसी आकर्षण और अहंता का नग्न प्रदर्शन होता। अब मैं बूढ़ा हूँ—फिर भी जब किसी नव-युवती की शोख चालों को देखता हूँ, तो अपने को समझाने लगता हूँ—क्या करोगे देख कर! वह तुम्हारी ओर कभी न देखेगी—और सजनी तो अब गृह की मालकिन मात्र थी—मेरे साथ ही बैठी-बैठा—कभी मन-हूसियत रहती, तो कभी सामाजिक चर्चा ही हमारा विषय हो जाता। फिर भी हम असहायता का अनुभव करते, क्योंकि हम अत्यधिक बूढ़े हो चुके थे और नवीन सन्तति भी कुछ-कुछ समझदार हो गई थी। हम परकटे पक्षी की भांति अपने घोंसलों में पड़े विश्राम करते थे।

पुराना जीवन शून्य हो चला था। वर्तमान का मूल्य अत्यधिक था। अब न सावन की हरियाली ही दिखी और न बरसात की रिमझिम। फिर अब सर्वत्र शुष्कता प्रतीक हो रही थी। क्या था जीवन! और क्या थे हम! क्या होगा हमारा! संसार भी तो यों ही चल रहा था। हम सोच रहे थे—

यही तो है सर्वत्र का अन्त और हमारी युवावस्था का मूल्य भी क्या था ? हम भूले रहते थे, मानों मादक द्रव्यों का नशा खाए हुए थे—न जाने कैसे गुजार दिया अपने यौवन को ! तभी मुझे सोमरस की याद आ रही थी, जब कि हम अपने उन्माद में, अहं में, वासना में और ममत्व में भी अपने यौवन को गुजार रहे थे—राका अपने स्वर्ग के निवास को सोमरस के मधुर रसस्वादन और उसकी चैतन्यमय विह्वलता में ही गुजार रही थी—परन्तु उसे नहीं मालूम था, एक दिन फिर पतझड़ आएगा, एक दिन फिर वह मर्त्यलोक में आएगी, उसका फिर से जन्म होगा। वह चिल्ला उठेगी—अपने असीम कष्टों से ! परन्तु फिर न रहेगी वह शीतल मन्द सुगन्ध ! न रहेगा सोमरस—न देवताओं की घोर क्रीणा ! और तब रहेगा—सुख दुःख ! मान अपमान ! और गर्मी तथा सर्दी।

सजनी फिर भी खोई हुई थी, समाज में। क्योंकि सामाजिक बातों का कभी अन्त न था। मैं खोज रहा था अपने लक्ष्य को ! क्या होगा मेरा निकट भविष्य ! मैं सोच रहा था—क्या फिर कभी राका से भेट हो सकेगी ! क्या अब भी वह स्वर्ग में रही होगी ! मैं सोच रहा था—मेरी मृत्यु तो अवश्यम्भावी है—क्या मैं स्वर्ग में कुछ समय के लिए विहार कर सकूँगा ? बुढ़ापे में मुझमें अजीब आकांक्षा जागृत हो रही थी—मानो मैं जंगल में पड़ा होकर किसी स्त्री के साथ विहार की कल्पना कर रहा था, जब मैं युवा था और मेरी आकांक्षा आज से किसी प्रकार कम न थी। मेरी आकांक्षा थी मैं स्वर्ग का विहार करूँ। राका के साथ रहूँ। फिर मुझे सुख ही सुख की अनुभूति रहे ! क्योंकि मुझे स्वर्ग का अनुभव था। मेरे बुढ़ापे में यही मेरी आकांक्षा मुझमें रस घोर ला रही थी—मैंने यह कभी अनुभव न किया—

मुझमें शून्यता है, उदासी है, आकांक्षा से रहित हूँ—क्योंकि अब मुझमें अहंता का अभाव हो रहा था, मेरी वासना भी मर चुकी थी और मेरी ममता भी राका के साथ ही विहार करने पर उतारू हो गई थी। मैं क्या करता? न थी मेरी बाल्यावस्था की आकांक्षा, न था युवा के सोमरस की मादकता। अब बुढ़ापे में मेरी अनोखी आकांक्षा मुझमें स्वर्ग की अनुभूतियाँ पैदा कर रही थी—और जब कि मैं व्याधिकी पीड़ा, अशक्तता और असहायता से कराह पड़ता, मुझमें राका की याद इस समय अटूट रहती। मैं सोच रहा था—शीघ्र ही मैं स्वर्ग लोक में नवीन शरीर में विहार करूँगा। जब कि मुझे असीम आनन्द की अनुभूति अवश्य होगी—यह जरा तो क्षणिक है—दुःख के बाद ही तो सुख का अनुभव और उसका महत्व प्रतीत होता है। मैं नहीं जान रहा था, मेरी समस्त पीड़ाओं का भास किधर निकला जा रहा था, क्योंकि मैं अपनी राका के लिए कल्पना की माला में मधुर विहार के फूलों को सँजो रहा था।

मुझे मृत्यु की अगाध पीड़ा थी। मेरा चैतन्य मुझसे निकलने वाला था। जब कि मैं सजनी से बिछुड़ रहा था, अपने प्यारे बच्चों से गुजर रहा था, सारे समाज से बिछुड़ रहा था—जिनमें रह कर ही मैंने अपनी युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और इस समय का बुढ़ापा भी काट रहा था—मैं सोच रहा था—यह सभी मेरी याद में दुःखी रहेंगे। परन्तु मैं बूढ़ा था और बुढ़ापे का अन्त भी यही होता है। इसलिए मुझे सन्तोष होता था। मैं काफी बूढ़ा हो चुका था और इस समय केवल मुझे कष्ट की अनुभूति हो रही थी। कभी दम घुटता, तो कभी मेरी धड़कन रुकती नजर आती। कभी सारे शरीर में झांझावात होता, तो कभी मानो वायुगोला उठकर मुझे तबाह किए डालता।

मेरी पीड़ा असह्य थी। फिर भी न तो मुझमें कराहने की शक्ति थी, न हिलने डुलने की। मेरे अन्दर ही अन्दर भूकम्प आ रहा था। मुझे कुछ भी सुध न थी—मैं क्या करूँगा, मुझे क्या करना चाहिए और मेरा क्या होगा ? फिर भी मुझे अन्त समय में राका की झलक मिल ही गई। मैं सोचने लगा, मुझे राका कभी मिली थी—कितनी सुन्दरी थी उस समय ! मैं सोच रहा था—मैं कितना उदास बैठा नजर आ रहा था, जब राका ने मेरे गले में अपने बाहुपाशों को डाल दिया—मुझे भास हुआ मैं सपना देख रहा था। मुझे जितना ही हर्ष उस समय हुआ, उतना ही दुःख इस समय हो रहा है। मानों मुझे अमृत के घड़े में डाल दिया गया हो—राका के चिर आकांक्षित स्पर्श मात्र से मैं विह्वल हो उठा था। सुख की अनुभूति का वर्णन करना निरी मूर्खता है—मेरी इस समय क्षणिक मृत्यु यन्त्रणा भी तो क्षणिक है ! परन्तु मैं इसका भी वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि मेरी पीड़ा अगाध है। मैं इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता—न जाने कब इस पीड़ा से मुक्ति मिलेगी—परन्तु जब मुक्ति मिलेगी तो मानों सभी पीड़ाएँ एक साथ मिलकर मुझपर घहरा पड़ेंगीं—तब शायद मैं राका की याद भी न कर सकूँगा !

फिर भी इस समय पीडा में मुझे याद हो आता है—मेरे समस्त जीवन के चित्र का ! इस समय मैं देख रहा हूँ, मेरी स्मरण शक्ति विलक्षण रूप से तीव्र हो उठी है। मुझे याद हो आता है, संसार जिसमें मैं रहा था, जिसमें ही मैं खोया खोया था—जिस वादाविवाद और अहंता में मैंने यह न जाना समय किधर गुजर रहा है। फिर मेरी आकांक्षाओं की समाप्ति मेरे जीवन पर्यन्त में न हुई। मेरे जीवन की महानतम् आकांक्षा थी—स्त्री विहार ! मुझमें नारी का मूल्य अत्यधिक था, क्योंकि नारी का सान्निध्य ही मुझमें अजीब आकर्षण

था—ऐसा इसलिए था—क्योंकि मैं जीवन के बड़े काल तक नारी से रहित रहा। मुझे किसी ने कृपा कटाक्ष से मोहित न किया, किसी ने भी मेरी महान् महत्वाकांक्षा पर ध्यान न दिया। मैं तड़पता ही रहा, अपने अरमान को संजोता हुआ और मुझे अन्त में कुछ भी न मिला—सिवा इसके कि निराशा, अन्धकार पूर्ण आँखें और हृदय का हाहाकार! मैं अकेला भी रहा कितने ही काल तक और उस समस्त काल में मुझे केवल याद आती रही सुन्दरी की। सुन्दरी ही मेरी समस्त आकांक्षाओं की आकांक्षा मात्र थी।

संसार ने मुझे कुछ भी सुख न दिया। इस बात से मुझमें बरबस ही आँसू निकल पड़ते हैं। मेरा हृदय अभी भी सजल है। मुझे तरस आता है—संसारी मायाजाल पर—उसके प्रपंच और उसकी कृतिमता पर। संसार दुःखी स्वयं भी रहा, मुझे भी उसने दुःखी किया। संसार की आकांक्षा को मैं अच्छी तरह जानता हूँ। मैं किसी रमणी को महान् आकांक्षा से भी परिचित हूँ—परन्तु बिडम्बना ही तो है—सभी तड़पते रहते हैं अपनी आकांक्षा को संजोते हुए—उनमें न रहती है राका सदृश उछृंखलता, न रहती है राका सी गुस्ताखी, फिर न ही रहती है राका जैसी भोग लालसा। संसार में यही होता रहा है—परन्तु मुझमें द्वेष और निराशा तो तब होती थी, जब मैं देखता था—दूसरे भाग्यवान हैं, जब कि मैं अभागा हूँ। दूसरों की आकांक्षा उतनी ही पूर्ण थी, जितनी मेरी अपूर्ण थी। लेकिन क्या करता, मेरा नसीब था! मैं नहीं बन सकता था उन्हीं के समान—जो चांदनी भरी रात में, मादक सुगन्ध और ऋतुओं की बहार में, नौका विहार करते, मधुर वीणा का वाद्य होता और प्रेमी और प्रेमिका न जाने किधर अपनी रात गुजार देते—आँखों ही आँखों में—जब कि प्रेमिका युवा होती—सुन्दर तो इतनी कि मेरी आकांक्षा

उस पर बलैये दे डालती और प्रेमी भी होता युवा, सुन्दर और गुणी—युवती उस पर अपनी समस्त आकांक्षाओं को निछावर कर देती—यदि युवक हमदर्द होता, सात्विक होता और दगा न देता, क्योंकि प्रेमिका फिर भी अपने प्रेमी से बड़ी-बड़ी आशायें कर रही होती।

मेरे प्रति किसी में भी किञ्चित मात्र प्रेम का लेश न था—इसका कारण यह भी था—क्योंकि मैं भग्न हृदय, अपूर्ण और अयोग्य था। मुझमें जितनी ही प्रबल मेरी आकांक्षा थी, जितना ही मैं द्वेष करता था, जितना ही अशान्त मेरा हृदय था—उतना ही मैं हताश होता, रमणी मुझसे भागती नजर आती और किसी ने मेरी ओर आँख उठाकर देखा भी नहीं! जब कि मेरे सामने अन्य कोई चारा न था, जब मैं एकाकी था और मुझे संसार से वैराग्य हो रहा था—मैं बोरिया-बिस्तर बाँधकर किसी निर्जन स्थान की तलाश में जा रहा था, जो शहर की चकाचौंध से दूर होता—न मैं किसी रमणी की चहल-कदमी देखता, न मैं प्रेमियों के प्रेमालाप को सुनता, न ही मैं वाटिका और शाम की टहलान देता—जब कि सूर्य समुद्र में डुबकियाँ मारता—प्रेमियों के धड़कते हृदय भी एक दूसरे से टकराने लगते—मैं भाग जाना चाहता था इन सभी से। फिर मैंने अपनी झोपड़ी बनाई। नीरवता में मुझे शान्ति मिली। मेरी आकांक्षा क्षीण हुई। मैंने सोचा यों ही क्यों न जीवन गुजार दूं! मैं अभागा हूँ तो और अधिक क्यों अपने को अभागा स्वयं बनाऊँ—आकांक्षा की अग्नि में जलकर, उससे निराश होकर और मुझे कुछ भी न मिले—केवल मृगतृष्णा की बौखलाहट, उसकी अतृप्त प्यास और मारा-मारा फिरता इधर से उधर—फिर भी पाता केवल शुष्क बालुका के थपेड़ों को और सूर्य भी अपनी प्रखर ज्वाला से मेरी प्यास को निरन्तर भड़काता ही चलता। मैं हताश होता ही, परन्तु मेरी

दौड़ बन्द न होती। मानो मेरी आकांक्षा ही दौड़ रही होती—मैं समस्त जीवन को यों ही दौड़ में और तड़पते हुए गुजार देता—मुझे कभी शान्ति न मिलती !

मुझे वन में शान्ति मिली। मैंने पशु-पक्षियों से प्रेम करना सीखा। मैंने कलकल करते हुए झरने से बातें करना सीखा। फिर लताओं और वृक्षों से आलिंगन में ही मेरी साध पूर्ण होती दीखी। क्योंकि मुझमें आकांक्षा का गुब्बार न था। मुझमें चकाचौंध न थी—सर्वत्र था शान्त, मादक और सुरम्य वातावरण। फिर एकाकीपन में अभ्यस्त होकर, मेरे में गुणों का चमत्कार हो रहा था। मैं इतना शान्त हो चला था कि, संसार की कोई भी रमणी मेरी इस अलौकिक शान्ति से विचलित हुए बिना न रहती। चाहे वह मुझसे वरण न कर पाती—क्योंकि उसमें उसकी स्वयं की बाधाएँ विराजमान थीं। बिना परिचय के वह क्योंकर मुझसे घुलमिल सकती थी और हाँ पृथ्वी ही क्यों देवलोक की राका को भी मेरे पास आना ही पड़ा। वह आई भी तो उसने मेरे गले में हाथ डाल दिया। मैं हर्ष विभोर हो उठा। मेरी चिर-आकांक्षा पूर्ण हुई। मानों मैं स्वर्ग की लहरियो में विहार कर रहा था। राका का साथ ही मेरे समस्त जीवन की साध थी।

१५

राका ! तुम तो उतनी ही सुन्दर हो, जितनी पहले थी। मेरे जाने के बाद तुमने कैसे गुजार दिया अपने इस बड़े काल को ! सोमरस की मादकता अभी भी तुममें दिखाई देती है। मैं तो तुम्हें ही याद करता रहा जीवन भर। क्योंकि तुमने मेरे जीवन में उजाला दिया। मुझे महान् सुख की अनुभूति दी।

राका का लाल चेहरा आज पूरे जोर शोर से दमक रहा था। उसकी आज आकांक्षा प्रज्ज्वलित हो उठी थी। कितने ही काल तक इसी आकांक्षा में वह भटकती रही थी। आज भी अपनी सहज भावुकता में वह मेरे गले में अपने हाथों को डाल रही थी। उसमें अजीब मादकता थी। मानो वह समस्त संसार की मादकता की संगठित शक्ति हो उठी हो। देवलोक ही क्या, समस्त संसार में आज राका जैसा मादक कोई न दीखा। आज राका मुझे कितने ही समय के बाद प्राप्त कर रही थी—जब कि मैं भी देव था, वह भी देवांगना।

परन्तु राका ! तुम्हारी यह चुप्पी मुझे खलती है। मैं तो चाहता हूँ—तुमसे बातों में अपने तमाम सुख को बटोर लूँ। राका तुम्हें बोलना ही पड़ेगा। परन्तु राका का हाथ सोमरस की ओर बढ़ रहा था। उसने मेरी ओर भी

बढ़ा दिया। आज उसने सोमरस पीने का अन्त कर दिया। आज उसने इतना सोमरस पिया जितना कभी न पिया था। तभी तो आज वह बोलने की सुध में भी न थी। बोली तो थी वह न मालूम कितना! परन्तु आज वह आकांक्षा की शिकार थी—उसकी आकांक्षा की पूर्ति होने का सौभाग्य हुआ था! विमान की उड़ान उसके साथ अठखेलियाँ कर रही थी। राका की बेसुधता को देख कर मैं भी बेसुध हो रहा था। फिर भी विमान तो उड़ ही रहा था—वह उड़ता भी रहा, और न राका मुझसे बोली, न मैं ही बोल सका। राका आज अपूर्व सुन्दरी लग रही थी, क्योंकि उसमें मादकता की आज अधिकता थी। राका ने आवश्यकता से कितना ही ज्यादा सोमरस का रसस्वादन किया था और राका यह भूल रही थी—उसका स्वर्ग विहार अब समाप्त होने पर था। तभी तो राका आज चुप थी। उसमें लौ बुझने के पूर्व की अजीब चमक थी। मैं चाहता था कि राका को अपने समस्त कामनाओं पर बिठाकर उडा ले चलूँ। हमारा विमान भी आज इतनी रफ्तार से उड़ रहा था, जितना स्वर्ग लोक में कभी भी और किसी का न उड़ा था—राका पागल थी आज अपने सोमरस की महान् अनुभूतियों में!

हमारा विमान कभी न रुका, क्योंकि हम अब भी मादकता के पुंज थे—और राका के हृदय की धड़कन भी पूर्ववत् ही थी। अब भी वह निर्निमेष नेत्रों से मुझे देख रही थी—उसका चेहरा मानो सफेद हो रहा था—उसका सोमरस का नशा कुछ कुछ कम हो रहा था। मुझे राका के स्पर्श मात्र से सुख की अनुभूति हो रही थी और राका की मादकता इस समय उसके विवेक का साथ पाकर आसमान को छू रही थी। राका ने अपना अमूल्य अवसर गुजार दिया, क्योंकि उसने सोमरस की अत्यधिक मात्रा को आवेश में ग्रहण कर

लिया था। अभी जब कि राका की तीव्र लालसा उत्पन्न हुई थी, जीवन में पहली बार—जबसे मुझसे उससे भेंट हुई—राका मुझे अपने में समेट ही लेना चाहती थी कि, एक वज्र प्रहार हुआ और राका की समस्त आकांक्षाओं का चकनाचूर हो गया। राका हताश हो उठी। उसकी चीख भी कम दर्दनाक न रही। अभी ही अभी तो उसके जीवन की महान् साध पूरी होनेवाली थी। मैं उसके साथ इस समय उसे महान् स्वर्गों के स्वर्ग में भी पहुँचने वाला था—राका को मर्त्यलोक में वापस लौटना पड़ा। उसकी आकांक्षा की पूर्ति न हो सकी, न हो सकी! मैं भी अभागा ही रहा। राका को पाकर भी मैंने उसे खो दिया। न उसे सुखी कर सका न खुद ही सुखी रहा। परन्तु राका की आकांक्षा मेरी आकांक्षा से कहीं ज्यादा महान् थी। मैंने उसे कितने ही कालों तक तड़पाता ही रख छोड़ा था और मेरे सामने राका का हताश, डरा हुआ भयावना चेहरा घूम उठा। जब राका की आकांक्षा इस समय अपनी अलौकिक दीपशिखा पर थी—उसके हाथों से अमृत का प्याला छीन लिया गया। राका अपनी परवशता में अपने सिर को पीट रही थी। उसकी आँखें सजल हो रही थीं। जितना दुःख तो उसे मर्त्यलोक में फेक दिए जाने से न हुआ—उतना दुःख उसके महान् क्रीड़ा की गोद से छीन लिए जाने से हुआ। उसकी कामना अधूरी ही रह गई—जब कि उसकी कामना पूर्ण होने ही वाली थी। मैं दहल उठा, मुझे एक महान् चीख सुनाई दी। मुझे मालूम है वह चीख अन्य कुछ नहीं राका की परवशता की थी—जिसने उसकी चिर आकांक्षा को पूरी न होने दिया। और जब कि वह पूर्ण होने ही वाली थी—क्योंकि राका का भरा पूरा हाथ आज जोर-शोर से मेरे वक्षस्थल में चिपक चुका था!

समाप्त

मानव और मशीन

द्वितीय खण्ड

'रुपए की कहानी' के एक अध्याय का उद्धरण मात्र।

डाक्टर साहब

डाक्टर के यहाँ मजदूरा अपने लड़के को दिखलाने लाया था। पुरस्कार स्वरूप मुझे डाक्टर को जेब में जाना पड़ा। डाक्टर बहुत ज्यादा व्यस्त थे। उनको कितने ही मरीजों को देखना था। कितनों के घर पर जाकर भी मरीजों को देखना था। उनकी फीस काफी थी। दवा का दाम तो लेते ही थे, अपनी पाई हुई योग्यता के लिए उनको अत्यधिक पुरस्कार मिल जाता था। उनकी प्रैक्टिस चल चुकी थी। जितना ही लोग उनको सम्मान प्रदर्शित करते थे, उतनी ही उनके पास दौलत भी थी। रोगियों के रोग का ठीक ठीक निदान और उसके लिए उचित आधुनिकतम सर्वश्रेष्ठ दवा का नुस्खा देना, यह उनकी विशेषता थी। रोगों के निदान की बढ़ती हुई दवाओं के आविष्कार के साथ साथ लोगों के रोगों की संख्या में भी वृद्धि होती जाती है। यदि मनुष्य ५० साल जीवित रहे तो उसे कम से कम ६०० बार तो अवश्य डाक्टर के पास जाना पड़ेगा और करीब २०० बार उसे घर पर बहुत खतरनाक अवस्था में बुलाया जाएगा! ऐसा कोई मनुष्य नहीं जिसका काम डाक्टरों से न पड़ता हो!

NEW DRUGS NOT HELPING
IMPROVEMENT IN HEALTH

World Doctors Agree unknown
Ailments taking place

The Hague, Septr. 5.

New and more insidious diseases are taking the place of others which have been cured by medical science, doctors attending the World Medical Association general assembly here agreed to-day.

The 550 delegates meeting adopted at this closing plenary session a report declaring "Experience does not seem to prove that man on the whole is getting healthier by every step forward by the welfare state."

(Amrita Bazar Patrika, dated 8th September, 1953, P. 5)

भावार्थ :—

नवीन दवाएँ स्वास्थ्य की उन्नति में सहायक नहीं हो रही हैं।

संसार के डाक्टरों ने यह मान लिया कि 'बिना जाने हुए' रोगों की पैदाइश हो रही है।

हेग—५ सितम्बर

'वर्ल्ड मेडिकल एसोसियेशन' की साधारण सभा में भाग लेने वाले डाक्टरों

ने यह आज मान लिया कि, नवीन और ज्यादा खतरनाक रोग, उन दूसरे रोगों का स्थान लेते जा रहे हैं जो कि डाक्टरी विज्ञान द्वारा रोग मुक्त किए गए हैं।

५५० सदस्यों की सभा ने समाप्त होते हुए इस पूर्ण सभा में घोषित करते हुए यह रिपोर्ट ग्रहण किया कि "अनुभव यह साबित करता हुआ नहीं मालूम देता कि, आदमी अधिकांश में अधिक स्वस्थ, निरोगावस्था के प्रत्येक कदम से, होता जा रहा है।

आधुनिक युग के विज्ञान उन्नति ने डाक्टरों की सहायता के लिए अनेकों प्रसाधनों का आविष्कार किया है। चीड़-फाड़, आपरेशन में आश्चर्यजनक उन्नति हुई है। डाक्टरी औजारों व दवाओं का निर्माण आधुनिकतम ढंग से पूर्ण सफाई व सुरक्षापूर्वक बड़ी बड़ी फैक्टरियों में मशीनों द्वारा किया जाता है। डाक्टर रोगी को मिक्सचर देता है, सूई लगाता है, खाने को भोजन देने की व्यवस्था करने को भी दयालुता दिखाता है। थोड़े दिन में मरीज का मर्ज चला जाता है। परन्तु मरीज कहता है "अभी कुछ कसर रह गई है। अभी-अभी जो इतना बुखार पाकर उठा हूँ! थोड़े दिनों में धीरे-धीरे ताकत आएगी। तब यह कमजोरी और सुस्ती भी दूर हो जाएगी।" कुछ समय तक छोटी-मोटी शिकायत मरीज को भला चंगा घोषित कर दिए जाने के बाद भी रहती है, परन्तु समय पाकर वह भी धीरे-धीरे दूर हो जाती है। मरीज डाक्टर का कृतज्ञ होता है। उसे सम्मान प्रदर्शित करता है। वह समझता है, डाक्टर ने उसे जीवन प्रदान किया है।

गरीब से गरीब आदमी हो, उसको भी रुग्णावस्था में डाक्टर के पास जाना ही पड़ता है। अगर बड़े फीस वाले डाक्टर के पास नहीं जा सकता, तो थोड़े फीस वाले डाक्टर के पास सही। शरीर रहेगा तो सब कुछ रहेगा। शरीर ही

न रहेगा तो फिर यह संसार, यह घर-दुआर, सामान, गहने आदि किस काम के रहेंगे ? मरने पर न मालूम कैसा रहेगा ! उसके बारे में तो हमारे सामने अन्धकार ही आता है। अन्धकार में स्वभावतः डर लगता है। फिर इस संसार में दुःख हो चाहे दर्द, जीने को तो मिल जाता है। सूरज और चाँद की रोशनी तो देखने को मिल जाती है। हमारे सामने प्रकाश तो रहता है। भय रहता अवश्य है, परन्तु वह अंधेरे का भूतों का भय तो नहीं रहता। मनुष्य कहता है "मैं मरूँगा नहीं। मुझे हर हालत में अपने को बचाना होगा। चाहे मेरा सब कुछ चला जाए, पर मैं अपनी रक्षा अवश्य करूँगा।"

मरीज भय से काँप उठता है। धन न रहते हुए भी डाक्टर को अपना जीवन प्रदाता समझकर उसके पास दौड़ा जाता है। जब तक उसके पास एक-एक कौड़ी, सामान व मकान रहता है, वह अपनी दवा व इलाज डाक्टर से कराता है। अन्त में जब उसके पास कुछ भी नहीं रह जाता तो वह फिर निराश हो जाता है। वह बड़बड़ा उठता है। वह अपनी चिकित्सा न करा सकेगा। वह दवा न खरीद सकेगा। वह सूई न लगवा सकेगा। वह पथ्य को भी न पा सकेगा। उसकी निराशा घने अंधकार में परिणित हो जाती है। मृत्यु का अंधकार और निराशा का अंधकार एक दूसरे से मिलने लगते हैं। रोगी की मौत न होते हुए भी वह मर जाता है। उसकी स्त्री, संबंधी व डाक्टर कहते हैं "वह ईलाज न करा सका इसलिए उसकी मृत्यु हो गई।" दवा, सूई, सोल्यूशन में जीवन तारक गुण है। वह मनुष्य को मृत्यु के मुँह से बाहर निकालती है। खतरनाक हालत को कम करती है। डाक्टर के पास गरीब से गरीब, अमीर से अमीर, सभी का पैसा पहुँचता है। संसार में जब तक एक भी पैसा रहेगा, डाक्टर को कुछ भी चिन्ता करने की आवश्यकता

नहीं। डाक्टर अपने को पूर्ण सुरक्षित—मशीन मालिक की भांति समझ सकता है।

बड़े घराने के, धनी परिवार के अपने स्वयं फेमिली डाक्टर होते हैं। परिवार के प्रत्येक सदस्य के स्वास्थ्य, खान-पान व नियमादि की जिम्मेदारी डाक्टर पर होती है। परिवार के प्रत्येक सदस्य की इस डाक्टर पर पूर्ण आस्था होती है। हो भी क्यों नहीं! डाक्टर भी योग्य हैं, अनुभवी हैं। इसके अतिरिक्त वह अपने कर्तव्यों को पूर्ण रूप से पूरा करने वाले भी हैं। वह हमदर्द हैं और भरसक प्रयत्न करने वाले हैं। रोगी समझता है, उसका पूरा-पूरा ख्याल रखा जा रहा है। वह शीघ्र ही अच्छा हो जायगा। उसका रोग आशावाद से कम हो जाता है। भविष्य के सुनहले सपनों में वह अपनी व्यथा बहुत कुछ हद तक भूल जाता है। डाक्टर की सुखद वाणी उसे राहत, सन्तोष व प्रसन्नता प्रदान करती है।

डाक्टर समाज का एक अंग है। डाक्टर ही मनुष्य को उसके शारीरिक अस्वस्थता व कष्ट में उससे छुटकारा दिलाता है, जिससे समाज निरोगी, स्वस्थ व उन्नति के पथ पर अग्रसर होता है। मानव की कुछ विशेषता ही ऐसी है कि, वह बीमार होना, रुग्ण होना, शारीरिक पीड़ाओं को सहन करना आदि को स्वाभाविक व अटूट समझता है। मानव को कोई न कोई रोग कुछ समय बाद बराबर आना एक कार्यक्रम की भांति बन गया है। मानव आज निरोग नहीं रह सकता। इस रोग के अस्तित्व व कारण का निदान, मनुष्यकृत ही होने से, विवादशील व बहुमती है। लोगों के अलग अलग अपने सिद्धान्त होते हैं। एक, दूसरे से अपने को श्रेष्ठ व निर्दोष समझता है। जिस रोगी को जिस सिद्धान्त व चिकित्सा पर श्रद्धा होती है, वह उसी चिकित्सा के विशेषज्ञ

के पास जाता है। कभी कभी जब एक चिकित्सा पद्धति से उसे शीघ्र लाभ नहीं होता, तो वह दूसरे के पास दौड़ जाता है और फिर तीसरे, चौथे के पास। कौन जाने कौन सी पद्धति निर्दोष और उपयुक्त है, और कौन सी सदोष और मध्यम श्रेणी की है? परन्तु जिसको जिस पद्धति से आराम व लाभ मिलता है, वह उसी पद्धति का भक्त व श्रद्धावान हो जाता है।

भिन्न-भिन्न मनुष्यों, विद्वानों की भिन्न-भिन्न राय होती है। मनुष्यों के इलाज के विषय में भी ऐसा ही है। वैद्यक, हकीमी, एलोपैथी, होमियोपैथी, प्राकृतिक चिकित्सा आदि अनेकों पद्धतियाँ हैं। सभी अपने को श्रेष्ठ कहने की दावेदार होती हैं। एलोपैथी कीटाणु को शरीर के विकार का कारण बताती है। वह विष को मारने का उपाय विष से ही करती है। प्राकृतिक चिकित्सा कहती है "मैं ही सबसे निर्दोष हूँ, क्योंकि मैं प्रकृति के ऊपर ही अपने को छोड़ देती हूँ।" साथ ही प्राकृतिक चिकित्सक कहता है "मैं तो केवल प्रकृति की सहायता और उसे उत्तेजित मात्र कर देता हूँ। प्रकृति ही मनुष्य को अच्छा करती है।"

प्राकृतिक चिकित्सा कुछ विशेष आकर्षक शब्द सुनने में लगता है। मनुष्य प्रकृति में रहता है। प्रकृति ही उसके उद्भव व जीवन का कारण होती है। प्राकृतिक सौन्दर्य मनुष्य को स्वभावतः आनन्द विभोर कर देता है। प्राकृतिक चिकित्सक अपने को प्रकृति का दूत कहता है। वह कहता है, मनुष्य को रोग तभी होता है जब वह कृत्रिम वातावरण में रहता है और अप्राकृतिक साधनों का उपभोग करता है, इसके साथ ही वह प्राकृतिक नियमों का पालन भी नहीं करता। वह यह भी कहता है कि रोग, मनुष्य के अन्दर की जीवन शक्ति की अपने शरीर की सफाई करने की, एक क्रिया मात्र

है। जब शरीर के अन्दर विकार पैदा हो जाते हैं, या आ जाते हैं तो उनको बाहर निकालने के लिए, शरीर को स्वस्थ रखने के लिए, प्रकृति को विशेष ढंग अख्तियार करना पड़ता है। इस विशेष ढंग अथवा क्रिया को ही हम रोग कहते हैं। उदाहरण के तौर से शरीर के विजातीय द्रव्यों को जलाने के लिए यह जीवन शक्ति शरीर के तापक्रम को बढ़ा देती है, जिससे सभी विकार जलकर भग्म हो जाते हैं। इस क्रिया को हम बुखार कहते हैं। विजातीय द्रव्यों को कभी-कभी एक स्थान पर एकत्रित कर वह शरीर से छेद कर बाहर निकालने की कोशिश करती है। इसको फोड़ा कहा जाता है। सर्दी, जुकाम, पेचिश आदि सभी रोग इस अन्दरुनी प्रकृति की सफाई की एक क्रिया मात्र ही हैं। ऐसी हालत में प्राकृतिक चिकित्सक कहता है कि, तुमको घबड़ाना नहीं चाहिए, बल्कि प्रसन्न होना चाहिए, क्योंकि तुम्हारे शरीर की सफाई हो रही है। तुम्हारी आत्मा को रहने के लिए स्वच्छ शरीर मिलने जा रहा है। तुम अब पहले से अधिक निरोग, प्रसन्नचित्त व शक्तिशाली होने जा रहे हो। शरीर में विकारों, गन्दगियों के रहने से शरीर यन्त्र ठीक से काम नहीं कर पाता और इस प्रकार यदि उसे बाहर न कर दिया जाय तो फिर शरीर निर्वाह कठिन हो जाय।

प्राकृतिक चिकित्सक अपने को प्रकृति के ऊपर ही छोड़ देने को कहता है। वह कहता है "अपने शरीर को शुद्ध रखो, तुमको कोई रोग ही नहीं होगा। बाहरी शत्रु, कीटाणु तुम्हारा कुछ भी नही बिगाड़ सकेंगे। प्राकृतिक आहार, विहार व शयन से तुम अपना काम आसानी से चला लोगे। रोगों के आ जाने पर प्राकृतिक चिकित्सक उसे दवा नहीं देता। वह तो प्रकृति की सहायता कर उसे और भी उभाड़ देता है। शरीर की सफाई

पूरे तौर से हो जाती है। फिर रोग के अच्छा हो जाने पर वह रोगी को हिदायत देता है कि, उसे अपना खान-पान, विहार व आराम आदि किस प्रकार रखना चाहिए।

मनुष्य यदि काफी संयम नहीं कर पाता तो समय-समय पर उसके शरीर की अन्दरुनी सफाई की आवश्यकता आ पड़ती है। शरीर भी एक यन्त्र है। घड़ी, जो चारो ओर से बन्द रहती है, उसकी भी प्रति साल सफाई करने की आवश्यकता पड़ती है। फिर मानव शरीर-यन्त्र तो हमेशा गन्दगी को लेता और निकालता रहता है। कृत्रिम वातावरण व आदतों से यह गन्दगी थोड़ी-थोड़ी इकट्ठी होती जाती है। अन्त में प्रकृति एक बार उसे साफ करके, कूड़ा-करकट बाहर निकालने के लिए कटिबद्ध हो जाती है। ऐसे समय में जब कि हम इस सफाई को रोग कहते हैं, घबड़ा नहीं जाना चाहिए। बल्कि प्राकृतिक उपायों का अवलंबन करना चाहिए जिससे शरीर की चटपट सफाई हो जाय और ज्यादा दिन चारपाई पर पड़ा न रहना पड़े। मिट्टी, वायु, प्रकाश, जल तथा खुले हुए स्थान इत्यादि प्राकृतिक साधनों का उपयोग कर मनुष्य जल्द निरोग हो सकता है और इस प्रकार उसे फिर काफी समय के लिए छुट्टी मिल जाती है। मनुष्य की जीवन शक्ति इस प्रकार निरन्तर बढ़ती है, साथ ही साथ उसकी आयु भी।

प्राकृतिक चिकित्सक दवाइयों का घोर विरोधी है। न वह कोई सोल्यूशन मानता है, न काढ़ा, न कोई दवा की टिकिआ और न किसी प्रकार की सूई ही। वह कहता है, संसार की जितनी भी मनुष्य को निरोग करने के लिए दवाइयाँ हैं, उनमें सभी या अधिकांश जहरीली हैं। इन जहरीले पदार्थों का प्रयोग शरीर को निरोग करने के लिए वह अनिष्टकारक मानता है। शरीर

की जीवनी शक्ति बड़ी विलक्षण होती है। वह शरीर का हमेशा भला चाहती है। जब वह शरीर की सफाई पर तत्पर रहती है, तो ऊपर से इन जहरीली दवाइयों को पाकर घबड़ा जाती है। वह शरीर की सफाई जल्दी से जल्दी कर डालना चाहती है, जिससे रोग की खतरनाक अवस्था पहुँच जाती है। उदाहरण के तौर से वह बुखार के तापक्रम को बढ़ा देती है या किसी अंग विशेष के दर्द को बढ़ा देती है। लेकिन यदि दवा आवश्यकता से अधिक जहरीली यानी शक्तिशाली होती है, तो जीवनी शक्ति को अपनी अन्दरुनी सफाई बन्द कर देनी पड़ती है। उसे फिर पहले इस शरीर को नुकसान पहुँचाने वाले भयानक विष का सामना करना पड़ता है। विष को पचाना, बाहर निकालना, अथवा उसे एक स्थान पर एकत्रित कर देना यही उसका काम हो जाता है। लोग सोचते हैं, रोग अच्छा हो गया। दवा कितनी सटीक बैठी ! डाक्टर को लम्बी लम्बी फीस मिलती है। उस पर श्रद्धा होती है। उस डाक्टर का नाम होता है। उसे फिर सभी लोग बुलाने लगते हैं। डाक्टर को दौलत, इज्जत व ख्याति सभी प्राप्त होते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सक इसे रोग का अच्छा होना नहीं कहते। रोग दब अवश्य जाते हैं, पर इतना ही केवल नहीं होता कि वह दब जाएँ, वरन् दवाइयों और सूइयों के जहरीले प्रभाव व द्रव्य उस दबे हुए रोग में और भी वृद्धि करते हैं। यानी गन्दगी और बढ़ जाती है। विजातीय द्रव्यों की और ज्यादा अधिकता हो जाने से, उसका विष समस्त शरीर में व्याप्त होने लगता है। शारीरिक यन्त्रों को ठीक से काम करने में बाधा पहुँचती है। जीवनी शक्ति भी इस संचित विष से बुरी तरह प्रभावित होती है। यह जीवनी शक्ति विष को निरन्तर बाहर निकालना चाहती हुई, स्वयं नष्ट होने लगती है। परन्तु

समय पाकर यही जीवनी शक्ति स्वयं बलवान होकर एक बार फिर समस्त शरीर की सफाई पर जुट जाती है। इस बार जीवनी शक्ति जोरों से अपना काम शुरू करती है। तभी हम कहते हैं, इस बार का रोग बहुत भीषण था। पर सच पूछा जाय तो वह इतना भीषण बनाया ही गया है। यदि दवा न ली गई होती तो वह रोग इतना भीषण कभी न होता। लेकिन फिर वही पुराने डाक्टर आते हैं, और इस बार और भी अधिक शक्तिशाली तथा जहरीली दवा दी जाती है। फलस्वरूप जीवनी शक्ति का और ज्यादा भयंकरता से ह्रास होता है। डाक्टर की जादुई चिकित्सा की वाह-वाही होती है। रोगी ऐसी चिकित्सा से प्रेम भी करने लगता है। कितना अच्छा है, एक गोली खाई, रोग गायब!

धीरे धीरे मनुष्य की जीवनी शक्ति कम होती जाती है। नए रोग (acute diseases) पुराने रोगों (cronic diseases) में बदल जाते हैं और अन्त में घातक (fatal) रोग में परिवर्तित हो सकते हैं। मनुष्य की नस्ल कमजोर होती जाती है। उसका शारीरिक गठन, शक्ति, तेज, आयु सभी में ह्रास होता है। परन्तु इस चिकित्सा पद्धति को कौन रोक सकता है! मानव कहेगा, उसने समस्त रोगों के इलाज की व्यवस्था की है। उसने घर घर पर डाक्टर और दवाइयाँ मुस्तैद कर दी है! रोग हुए नहीं कि उनकी चिकित्सा तुरंत कर दी जाती है। मानव अपने पर गर्व करेगा कि उसने जनता के स्वास्थ्य के लिए कितनी सुन्दर व्यवस्था कर दी है। उसने अरबों रुपया इस महकमें के लिए दिया है, जिसमें सभी व्यक्तियों को उचित चिकित्सा प्रदान की जा सके। पर ऐसी हालत में समस्त मानव पुराने रोगों का रोगी होकर, घातक रोगों की तरफ अग्रसर होने लगेगा। जड़ मशीन की बनाई हुई जड़ दवाओं से मानव भी सर्वदा के लिए जड़ हो जायगा!



—एक झलक

···उसने यह जाना ही नहीं, दुःख क्या है ? घोर लांछना, फिर करुणा की तीव्र लहरी, समाज का अनोखा परिहास ! यह सभी उसे न डिगा सके। वह अविचल रहा, नित्य तृप्त, नित्य चैतन्य, और नित्य विलासी !···

···न तो यहाँ रोमांस पीड़ित दो सहपाठियों की गुप्त मन्त्रणा है, न यहाँ किसी वादाविवाद् में अन्य को पराजित करने का अहंभाव है, और न ही है यहाँ किसी तीसरे या चौथे की कमजोरियों या गलतियों का छिद्रान्वेषण !

संसारी पुरुष के लिए तो यह नीरवता शून्य है। फिर शून्य में भी एक ऐसा प्राणी स्थित है, जिसका मन भी प्रकृति की भाँति ही शून्य है। इस शून्य में मन्दगति से बहते हुए जलधार के समान ही, प्राणी के अन्तराल में एक मधुर स्पन्दन का आभास था। प्राणी और प्रकृति दोनों में पूर्ण सामंजस्य था, तभी तो ऐसे चित्र का निर्माण हो सका।...

...रामू की किशोरावस्था में लांछना ही लांछना थी। रामू इसी लांछना को आज संतप्त हृदय से गंगा के शीतल जलधार में उड़ेल रहा था। रामू समाज से दूर! उसे इसमें आनन्द आ रहा था। रामू बड़े से बड़े तपस्वियों के लिए भी ईर्षा का विषय था! थोड़ी ही देर में वह फिर से लांछना की दुनियां में जाने वाला था। क्या कायर की भाँति? रामू जन्मतः वीर था। वह कायर क्यों?...

...कितनी निर्दयी थीं बड़ी बहू! अपने स्नेहपाश में रामू को बाँध कर भी, वह उसकी तड़पन को अनभिज्ञ व अननुभवी नेत्रों से मूढ़ों की भाँति देखा करती थीं। बड़ी बहू का प्रेम चाहे जितना भी रहा हो, परन्तु फिर भी रामू बड़ी बहू के लिए गैर ही था। अपना अपना होता है, पराया, पराया! रामू की माँ होती तो स्नेह बंधन तो पूर्ववत् ही रहता, परन्तु उस स्नेह बन्धन में होती सजगता! रामू की माँ वर्तमान रामू की अवस्था पर तड़फड़ा उठतीं।...

...हीरालाल की शादी हीरालाल को नई दुनियाँ में ले आई। शीघ्र ही हीरालाल एक बच्चे के बाप भी बनने वाले थे। हीरालाल की बहू किसी भी गृह लक्ष्मी से कम न थीं। उनका गोल परन्तु गम्भीर चेहरा और बड़ी बड़ी पलकें, उनके गुणों में चार चाँद लगा देती थीं। जैसे थे हीरालाल, वैसी ही थीं —उनकी बहू। खूब था जोड़ा! लोग कृत्य कृत्य थे।...

···इस नई, सुन्दर और यौवन से मदमाती स्त्री में ईर्षा की मात्रा भी स्वभावत: अत्यधिक थी। निर्दोष चरित्र की नयी नवेली अपने में फिर भी एक अजीब विष बुझे हास्य को धारण किए हुए थीं। उनके तीरों से न जाने कितने ही घायल होकर तड़प रहे थे।···वह शायद चाहती थीं कि, संसार के सभी मनुष्य एक मात्र उन्हीं को एकटक निहारा करें। वह शायद संसार के अन्य किसी भी स्त्री का अस्तित्व नहीं पसन्द करती थीं। लोमड़ी का अंगूरों को पाने के लिए उछलना उनको अच्छा लगता था। परन्तु वह यह नहीं चाहती थीं कि, लोमड़ी यह कहे कि अंगूर खट्टे हैं।···

···निराशा पूर्ण वाक्यों के अन्तर्गत उसने यह जाना ही नहीं कि निराशा क्या होती है। वह जानता था, वह एक दिन इन बोलने वालों के मुँह को बन्द कर देगा। रामू कर्म की ओर प्रवृत्त हो रहा था। वह अपनी तमाम एकाग्र-चित्तता, अपने निर्धारित काम में ही लगा देना चाहता था। रामू के पास गपशप करने का वक्त ही कहाँ था। जब उसे लांछना के बाद अवसर मिलता तो वह एकांत में रोया करता। यही तो थी उसकी दिनचर्या!···

···"नादान दोस्त से चालाक दुश्मन अच्छा!" बड़ी बहू रामू के लिए एक नादान दोस्त ही तो थीं। परन्तु बड़ी बहू की यह नादानी रामू के लिए एक मृत्यु का पैगाम थी। रामू अपने इस राग, द्वेष, शोक व भय-अभय का जुआ अपने कंधों पर से उतार फेकने को कृत-संकल्प हो चुका था। रामू शीघ्र ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचने वाला था। वह क्या करे इस नर्क से छुटकारा पाने के लिए! रामू एक ऐसा जीवन गुजार रहा था, जो बिल्कुल रसहीन था। रसहीन ही क्यों! प्रश्न तो यह था—रामू के जीवन का लाभ ही क्या?···

···और बड़ी बहू अपनी सुपुत्री पर निछावर हो उठीं ! रामू की बूआ अब तक अपनी बुजुर्गी को छोड़ चुकी थीं। रामू का मन्त्र उनपर चल चुका था। रामू की बूआ अब बूआ न होकर—साधारण स्त्री हो चुकी थीं। वह रामू पर अपनी समस्त कामनाओं को निछावर कर चुकी थीं। तरुणी बूआ अब तरुणी स्त्री होकर रामू के चारो ओर घूम रही थीं—एक टक निहारती हुई !···

···परन्तु यदि सूक्ष्म हवा की सूक्ष्म रमणियाँ भी गुरुतर रामू का स्पर्श करतीं तो क्या प्रभाव पड़ता ! अन्त में उन्हें अपना प्रभाव दिखाने के लिए स्वयं भी गुरुतर रूप धारण करना पड़ा। सूक्ष्म कामनियाँ एक साथ मिलकर प्रचण्ड वेग से उड़ चलीं। मानो प्रचण्ड आँधी हो, तूफान हो और जंगलों को झकझोर डाले, आग लगा दे, पहाड़ों को भी दहला डाले।···बेहूदे, बद्तमीज, तुझे सूझता नहीं, तू किसी स्त्री से छेड़खानी करता है—उससे टकराता है। ले मजा चख ! लेकिन शायद इसलिए भी कि, बाद में रामू से इस प्रकार परिचय करें—उसे ठोक पीट कर—बाद में उससे आह्वान करें—वह उनके साथ घूमने को चले। जब कि रामू किसी के साथ में हो, समस्त रमणियाँ उसके पीछे पीछे हों—रामू की संगिनी से वह सभी ईर्ष्या करें या रामू से परिचय प्राप्त कर लेने का उन्हें एक नया जरिया मिल जाए।···

···परन्तु प्रेमजी और बड़ी बहू का यह खयाल बिलकुल गलत था। उन्हें हीरालाल की लांछना की गहराई का पता न था। उन्हें यह न मालूम था, रामू के ऊपर इस समय क्या गुजर रही है। रामू का एकाकीपन प्रेमजी महसूस न करते थे। परन्तु हीरालाल इसको समझता था। हीरालाल ने घृत में आहुति दी, यह आहुति निरन्तर वह देता ही रहा। और जब अग्नि इतनी प्रज्ज्वलित

हो उठी कि, वह घर को ही भस्म कर डाले—तो हीरालाल, श्रीमती हीरालाल के साथ भाग चला—प्रेमजी और बड़ी बहू को छोड़कर, अपने हाल पर !···

···'रामू विवाह और लांछना' का सप्ताह धूमधाम से सम्पन्न हुआ। बड़ी बहू और प्रेमजी तथा हीरालाल का दरबार भी खूब गुलजार रहा। लोगों को एक स्थान पर इकत्र होने का मौका मिला। दिल से दिल मिले। चाय की प्यालियाँ खनकीं। टोस्ट और बिस्कुटों पर मक्खन लगाये गये। झंडियों की जगह रामू की लांछना फहरा रही थी, और सभी की आवाज एक साथ मिलकर लाउडस्पीकर का रूप धारण कर रही थी।···

···ऐसा था मनोरञ्जन, और ऐसी थी शान्ति !—ऐसी थी हँसी कि विरलों को ही नसीब हो ! मानसिक शान्ति तो हद दर्जे की ! रामू और उसकी स्त्री—धनी न होकर भी सुखी थे। हीरालाल तो इसे देखकर दुर्योधन बन बैठा। उसे याद हो आई, द्रौपदीकी खिलखिलाहट ! उसे याद हो आया पाण्डवोंका बनवास ! उसे याद हो आयी कुरुक्षेत्र की भूमि ! फिर भी रामू अकेला था। न थे पाण्डव, न उसके पाँच भाई—बलवान्, पुरुषार्थी और तपस्वी !···

···प्रेम में गरीबी और अमीरी बाधक नहीं होती ! मुख्य प्रश्न है—युवक के गुण क्या हैं ? सभी गरीब भी प्रेम के पात्र नहीं होते, और इसी प्रकार सब अमीरों से भी सभी स्त्रियाँ प्रेम नहीं करने लग जातीं। यदि सुहाना चेहरा हो, सुदृढ़ शरीर हो और उदार हृदय हो तो कोई भी व्यक्ति प्रेमी बनने की श्रेणी में आ ही सकता है। इसके अतिरिक्त रस भरी बातें, कामनाओं का अभाव, सहज उच्छृङ्खलता तथा मूढ़ता से हीन, साथ ही गाम्भीर्य का पुट लिए हुए—कोई भी व्यक्ति सच्चरित्र और कुलीन होने का दावा कर सकता है।···

···आधुनिक सभ्यता का पोषक रामू और उसका परिवार यदि विवेक से काम न लेता तो अनर्थ हो जाता। बात बनने भी न पाती, बिगड़ जाती। बिगड़ती भी तो कम नहीं! तिल का ताड़ हो जाता और श्रीमती रामू और रामू दोनों को ही शायद शहर छोड़ना पड़ता। सामाजिक लांछना फिर भी उनका साथ न छोड़ती। हीरालाल दकियानूसी समाज का बादशाह था। उसकी पहुँच सर्वत्र और अबाध थी। रामू का बदनाम होना बुरा न था, परन्तु श्रीमती रामू की बदनामी वास्तव में असह्य होती।···

···रामू की चिन्ताएँ कम न थीं। रामू जीवन का कलाकार तो था, परन्तु संसार का नहीं। ···समय नाज़ुक था। रामू देख रहा था देश की हालत को। सर्वत्र आर्थिक संकट, घोर बेकारी और तीव्र प्रतियोगिता। रामू के लिए एक ही चारा था, वह भी चील बन जाता—रोटी के लिए चील झपट्टा करता और यदि सफल हो जाता तो अपने घोसले में रामू के साथ बैठ कर उस पर चोंचे मारता! और फिर भी यदि पेट न भरता तो फिर से कावा काटता और देखता अपने शिकार को, अपनी योग्यता, शक्ति और मक्कारी को!···

आर्थिक भय और चिन्ता आज सर्वत्र, समस्त संसार में विराजमान है। क्या करोड़पति, पूँजीपति से लेकर बेकार और पैसा रहित व्यक्ति तक, सभी के सामने व्यग्रता, भय और आशंका प्रस्तुत है। क्या कारण है, इसके मूल में? मानव की समस्याओं का क्या हल है और उसके सुख, शान्ति और सन्तोष का आदि श्रोत क्या है? निश्चय ही आज के युग की गम्भीर समस्याओं को भुलाया नहीं जा सकता। कठोर सत्य आज सभी के सिर पर मंडरा रहा है, और वह है—रोजी, रोटी और भोग!

पढ़िए

मानव और मशीन

प्रथम, द्वितीय व तृतीय

खण्डों में

प्रथम खण्ड—युग की पुस्तक!

द्वितीय खण्ड—'रुपये की कहानी'

तृतीय खण्ड—'समाज रचना'

युग की पुस्तक !



प्रथम खण्ड

मूल्य २॥) पृ० सं० ३२०

कुछ सम्मतियाँ—

'बड़ी उपयोगी पुस्तक जान पड़ती है, सामयिक भी'।—श्री मैथिलीशरण गुप्त

'I am grateful...for...kind thought'

—Shri Sri Prakash

'विषय के प्रतिपादन की दृष्टि से···बड़ा परिश्रम किया है, यह पुस्तक के प्रत्येक अध्याय से स्पष्ट हो जाता है। ऐसे विषय की इस समय देश को बड़ी जरूरत है। राष्ट्र के आर्थिक, तज्जनित और सर्वांगीण दौर्बल्य को मिटाने के

क्षेत्र में विभिन्न दृष्टिकोणों से जो कुछ किया जा रहा है, उसमें···पुस्तक का योगदान किसी कदर कम नहीं रहेगा।'

—श्री रतनलाल जोशी
सम्पादक, नवनीत।

···गान्धी जी के ही सिद्धान्तों का पुनः प्रतिपादन और समर्थन किया है—एक सीमा तक उनके सिद्धान्त ठीक ही हैं।··· —डा० भगवानदास

'मानव और मशीन' एक सुन्दर रचना है। उत्पादन के साथ-साथ न्याय-संगत वितरण के सिद्धान्त का प्रतिपादन···बहुत ही खूबी के साथ किया है। आशा है, पुस्तक का स्वयं समुचित स्वागत होगा। —रामेश्वर सिंह सोलंकी
'अमृत पत्रिका'

···पुस्तक बहुत अच्छे ढंग से लिखी गयी है, रोगों की सरल चिकित्सा के जो उद्धरण···लिए गये हैं, उनका उपयोग बहुत अच्छे ढग से किया है।··· —श्री बिट्ठलदास मोदी, सम्पादक, 'आरोग्य'

···पुस्तक के पृष्ठों एवं पंक्तियों में विचरण करने के पश्चात् पाठक अनुभव करेंगे कि उनका परिश्रम व्यर्थ नहीं गया है। ···यह पुस्तक अलमारी की शोभा की अपेक्षा मस्तिष्क की शोभा बढ़ाने में, मैं समझता हूँ, अधिक समर्थ होगी। —श्री रघुनाथ सिंह (M. P.)

वर्तमान युग में जब कि मशीन के दुरुपयोग के कारण मानव को बहुत हद तक बजाय लाभ होने के हानि अधिक हो रही है, पूँजीपतियों द्वारा उसका शोषण हो रहा है, जिसके फलस्वरूप साम्यवाद का जोर बढ़ता जा रहा है, लेखक के विचार पर्याप्त विचारणीय हैं।

पुस्तक की शैली अपने आप में रोचक है तथा विषय का प्रतिपादन भी अनुकूल है·· पुस्तक पठनीय है। —'सफल जीवन', नयी देहली

SPEAKERS' COUNCIL, BANARAS

The 'Speakers' Council' which is a forum for giving vent to freedom of individual opinion is a unique organisation of its kind. It invites ladies and gentlemen to avail the opportunity for making speeches and becoming good orators.

There is a high support to the Speakers' Council and it is to serve those aspiring people who are desirous of exercising their freedom of expression ; which is a fundamental right in the present democratic set-up of the society.

Write for full particulars to—

L. K. Agrawal,

A 2/88 A, Trilochan,

Banaras